अंक : १२३

जुलाई - सितंबर २०१३

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

हरि प्रकाश त्यागी, शिव प्रताप पाल, पुष्पा सक्सेना,
डॉ. निहारिका, माला वर्मा

•

आमने-सामने
माला वर्मा

१५ रुपये

जुलाई-सितंबर २०१३

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

कहानियां

महायोगी – **हरिप्रकाश राठी** ७

पंद्रह अगस्त – **शिव प्रताप पाल** ११

धूप–छांव – **पुष्पा सक्सेना** १७

इंसान होने का अपराध – **डॉ.निहारिका** २७

सॉरी बेटे...! – **माला वर्मा** ३३

लघुकथाएं

सरदारनी / **लक्ष्मी रूपल** १२

पानी रे पानी / **लक्ष्मी रूपल** २५

सर्विस बुक / **आनंद बिल्थरे** ३१

बर्थ–डे पार्टी / **मनोज अबोध** ३२

पत्र–प्रतिपत्र / **प्रेम बहादुर कुलश्रेष्ठ "विपिन"** ४०

ग़ज़लें / कविता / गीत

गज़लें / सलीम अख़्तर, कृष्ण सुकुमार १६

ग़ज़लें / **उदय शंकर सिंह "उदय"** २१

ग़ज़ल / **गौतम राजरिशी** ३२

कविता / **लक्ष्मी रूपल** ४७

गीत / **स्वर्ण रेखा मिश्रा** ५५

स्तंभ

"कुछ कही, कुछ अनकही" २

लेटर बॉक्स ४

"आमने–सामने" / **माला वर्मा** ४१

"बाइस्कोप" (*सविता बजाज*) / **मज़ाहिर रहीम** ४९

पुस्तक–समीक्षा ५१

आवरण चित्र : डॉ. अरविंद

अमेरिका का येलो स्टोन पार्क तीन राज्यों में फैला है. यह पार्क एक बड़ा क्रेटर है. येलो स्टोन झील क्रेटर में ही स्थित है. ज़मीन पर या पानी में कहीं भी लावा निकलने लगता है या गर्म पानी के सोते निकलते रहते हैं. जिनकी संख्या हज़ारों में है. चित्र में ऐसे ही सोते से निकल कर आता हुआ पानी. गंधक और माइक्रोव्स के मिश्रण से रंगों की अनोखी छटा.

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

प्रधान संपादक

डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका

मंजुश्री

संपादन सहयोग

जय प्रकाश त्रिपाठी

अश्विनी कुमार मिश्र

अशोक वशिष्ठ

हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●

आजीवन : ५०० रु., **त्रैवार्षिक** : १२५ रु.,
वार्षिक : ५० रु.,
(वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)

सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●

Namit Saksena,
(M) 347-514-4222
Naresh Mittal.
(M) 845-304-2414

● **शिकागो संपर्क** ●

Tulika Saksena
(M) 224-875-0738

●**"कथाबिंब" वेबसाइट पर उपलब्ध**●
www.kathabimb.com

e-mail : kathabimb@yahoo.com

एक प्रति का मूल्य : १५ रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कुछ कही, कुछ अनकही

"कथाबिंब" अप्रैल-जून २०१३ का अंक जुलाई के दूसरे-तीसरे सप्ताह में पाठकों को भेज दिया गया था. अंक की पोस्टिंग के तुरंत बाद ही हम, पति-पत्नी अमेरिका की यात्रा के लिए चल दिये. वर्तमान अंक की सभी कहानियां हमें ई-मेल से प्राप्त हुईं और चयन उपरांत, ई-मेल द्वारा ही प्रेस को भेजी गयीं. यही कारण है कि लगभग दो महीने विदेश में रहने के बावज़ूद पत्रिका का यह १२३वां अंक, बिना किसी अतिरिक्त विलंब के पाठकों के हाथों में पहुंच सका है. जैसा पहले भी उल्लेख किया गया था कि हमारी सदा कोशिश रही है कि*"कथाबिंब"* के संचालन-प्रकाशन में अधुनातन तकनीक का इस्तेमाल किया जाये. यह इसी कोशिश का परिणाम है. हमें खेद है कि इस अंक में, "सागर-सीपी" स्तंभ में नवगीतकार निर्मल शुक्ल का साक्षात्कार जाना था किंतु किन्हीं अपरिहार्य कारणों से ऐसा संभव नहीं हो सका. पाठक यह साक्षात्कार अगले अंक में अवश्य पढ़ पायेंगे.

पिछले वर्ष की तरह *"संस्कृति संरक्षण संस्था"* द्वारा २२ जुलाई को स्कूली छात्रों के लिए संस्कृत श्लोक वाचन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया. इसमें विभिन्न स्कूलों के लगभग ११०० बच्चों ने भाग लिया. चुने हुए ४० छात्रों को अपनी प्रतिभा का निर्णायकों के सम्मुख प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हुआ. इसी तरह *"हिंदी पखवाड़े"* में २३ सितंबर को एक ऑन-द-स्पॉट काव्य-सृजन प्रतियोगिता भी आयोजित की गयी. इसमें २०० विद्यार्थियों ने भाग लिया. कहना न होगा कि संस्था द्वारा आयोजित ये दोनों ही कार्यक्रम बहुत लोकप्रय हैं.

●

आइए, इस अंक की कहानियों पर दृष्टिपात करें -- पहली कहानी *"महायोगी"* (हरिप्रकाश राठी) एक ऐसे आदमी की कहानी है जिसकी आंखों के सामने बचपन में उसकी बहन के साथ कुछ ऐसा ग़लत घटा जिसके कारण उसके मन में हमेशा के लिए एक गांठ पड़ गयी. इसके चलते भूराराम और उसकी पत्नी माया कभी एक न हो सके. दोनों सालों तक अपनी इस मनोव्यथा को किसी से शेयर नहीं कर पाये. दोनों योगियों की तरह मन की पीड़ा को बर्दाश्त करते रहे. लेकिन भूराराम के कार्यालय के एक सहयोगी ने अच्छे मित्र के रूप में आगे आकर सारा कुछ बदल दिया. अगली कहानी *"पंद्रह अगस्त"* (शिव प्रताप पाल) मेहनती नाम के एक रिक्शेवाले की कहानी है जिसकी एकमात्र प्राथमिकता मेहनत करके किसी तरह दो जून रोटी खाना है, चाहे रोटी कितनी भी सूखी क्यों न हो. पंद्रह अगस्त हम बरसों से आज़ादी दिवस के रूप में मनाते आ रहे हैं, मगर मेहनती जैसे करोड़ों लोग जो रोज़ जी तोड़ मेहनत करते हैं वे क्या वास्तव में आज़ाद हैं ? पुष्पा सक्सेना की *"धूप-छांव"* विदेश में रह रहे एक भारतीय युवक की कहानी है जिसने अपना नाम जयकुमार से जैकी तो कर लिया किंतु अपने भारतीय संस्कार नहीं बदल पाया. दोस्त कमल की मां के हाथों का बना भारतीय खाना उसकी कमज़ोरी हो गयी. भारत से आयी कमल की बहन और जैकी एक-दूसरे को कब चाहने लगे कुछ मालूम ही नहीं चला ! लेकिन नियति को कुछ और ही मंजूर था. यह संयोग मात्र ही है कि डॉ. नीहारिका की *"इन्सान होने का अपराध"* भी एक रिक्शा चालक की कहानी है. लेकिन यहां परिवेश थोड़ा भिन्न है. चाहे मेहनती हो या पतरू नाम अलग हो सकते हैं किंतु परिस्थितियां कमोबेश वे ही रहती हैं. पतरू की पत्नी चौथी जचकी में चल बसी. पीछे रोते-बिलखते तीन बच्चे रह गये. पतरू क्या करे कि बच्चों के पेट में अन्न का दाना जाये ? पांच साल की बच्ची चंपा ने कहीं सुना था कि स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों को दिन में खाना मिलता है. बस यही मिड-डे मील पतरू को अपराध की राह पर ले जाता है. अंक की पांचवी और अंतिम कहानी है *"सॉरी बेटे..."* (माला वर्मा). छोटे बेटे की शादी का माहौल है, बारात जाने की तैयारियां चल रही हैं. मां सेहरा बांधे दूल्हे को देखकर भाव विह्वल हो जाती है. उसके मन-पटल पर बच्चे के जन्म से लेकर अब तक का सारा कुछ एक चलचित्र की तरह उभरने लगता है. पुत्र नीलाभ ने परिवार की हर छोटी-बड़ी आर्थिक ज़रूरत को पूरा किया है. लेकिन यह वही तीसरी संतान है जिसके न आने का निर्णय पति-पत्नी ने कर लिया था. लेकिन विधाता का निर्णय कुछ और था !

●

लोकसभा के चुनावों में अभी ९-१० महीने बाकी हैं. उससे पूर्व नवंबर-दिसंबर में पांच प्रांतों में विधान सभा के चुनाव होने हैं. इन चुनावों को सेमी फ़ाइनल की तरह से देखा जा रहा है. चारों ओर सरगर्मी है. काफ़ी दिनों तक मीडिया वाले नरेंद्र मोदी के पीछे हाथ धोकर पड़े थे, हर किसी अवसर पर एक ही प्रश्न कि क्या आप प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार हैं? तो पहले भाजपा ने मोदी के हाथ चुनावों के प्रचार की बागडोर थमा दी और अंततः पार्टी के प्रधानमंत्री के पद के लिए

भी नामांकित किया. भाजपा में धीरे-धीरे चीज़ें स्पष्ट होती जा रही हैं लेकिन अब कॉन्ग्रेस दुविधा में है : मनमोहन सिंह या फिर राहुल गांधी ? वैसे मनमोहन सिंह का कहना है कि वे राहुल गांधी के नीचे काम करने के लिए तैयार हैं. जैसे, इसके अलावा उनके पास कोई अन्य विकल्प है ! इतिहास के पिछले कुछ पन्नों को देखें तो एक और सरदार थे. सरदार ज़ैलसिंह जो झाड़ू लगाने को तत्पर रहते थे. अपनी इस वफ़ादारी के कारण ही उन्हें राष्ट्रपति बनाया गया. यह अलग बात है कि बाद में प्रधानमंत्री राजीव गांधी और उनके बीच मतभेद हो गये थे. यहां तक कि उनकी गतिविधियों पर सरकार द्वारा नज़र रखी जाने लगी.

इतिहास एक बार फिर अपने आपको दोहरा रहा है. आज से लगभग २५-२७ साल पहले शाहबानू केस में दिये उच्चतम न्यायालय के निर्णय को तुष्टीकरण के नाम पर तात्कालीन कॉन्ग्रेस सरकार ने पलट दिया था. फिर लगा कि कहीं वार उलटा न पड़ जाये तो अयोध्या में राम मंदिर का शिलान्यास करवाया. यहां तक कि "लात वाले बाबा" से राजीव गांधी ने आशीर्वाद भी लिया. पिता राजीव गांधी और पुत्र राहुल में काफ़ी साम्य है. –तब "हमने देखा है, हम देख रहे हैं और हम आगे भी देखेंगे" का युग था. शायद जनवरी १९८७ की बात है. दिल्ली के विज्ञान भवन की एक प्रेस कॉन्फ्रेन्स में एक पाकिस्तानी रिपोर्टर ने राजीव जी से पूछा कि अपनी इस्लामाबाद की यात्रा के बारे में आपने जो कहा और आपके विदेश सचिव ने जो कहा उसमें तालमेल नहीं है. ऐसा क्यों ? इस प्रश्न के उत्तर में, राजीव गांधी ने छूटते ही कहा कि शीघ्र ही आप मेरे नये विदेश सचिव से बात कर पायेंगे. विदेश सचिव वेंकटेश्वरन खुले आम की गयी इस बे-इज़्ज़ती को बर्दाश्त नहीं कर पाये और उसी दोपहर सचिव के पद से इस्तीफ़ा दे दिया. १९८७ की तरह ही, अभी हाल ही में सितंबर २०१३ में, प्रेस क्लब ऑफ इंडिया में कॉन्ग्रेस के प्रवक्ता श्री माकन ने प्रेस कॉन्फ्रेन्स बुलाई थी जिसमें वे कारण बताने वाले थे कि क्यों कैबिनेट ने उच्चतम न्यायालय के आदेश को पलट कर नया अध्यादेश ज़ारी किया है. इससे पहले कि वे कुछ कहते, इतने में वहां राहुल बाबा आ पहुंचे और मीडिया को संबोधित करने लगे कि कैबिनेट द्वारा पारित अध्यादेश पूरी तरह "नॉनसेन्स" है, इसे फाड़ कर डस्टबिन में फेंक देना चाहिए. सभी उपस्थित-गण सकते में आ गये. उस समय माकन जी के पास बगलें झांकने के अलावा कोई अन्य रास्ता नहीं था. राहुल गांधी कॉन्ग्रेस के उपाध्यक्ष अवश्य हैं पर सरकार में उनकी हैसियत क्या है ? क्या वे कैबिनेट और प्रधानमंत्री से ऊपर हैं ? यह सही है कि यह अध्यादेश "नॉनसेन्स" ही है. किंतु कैबिनेट ने इसे तमाम बहसों के बाद पारित किया था. युवराज ने पहले आपत्ति क्यों नहीं उठायी, इस तरह ड्रामा करने की क्या ज़रूरत थी ? विशेषकर जब प्रधानमंत्री विदेश यात्रा पर थे. एक तरह राहुल ने प्रधानमंत्री को खुली चुनौती दे डाली. पर मनमोहन सिंह वेंकटेश्वरन तो हैं नहीं जो इस्तीफ़ा दें.

अंततः सरकार को अध्यादेश वापस लेना पड़ा. इसकी गाज़ सीधे-सीधे सहयोगी लालू प्रसाद यादव पर पड़ी. १७ साल बाद चारा घोटाले में सज़ा सुनाई गयी और लालू जी को जेल जाना पड़ा. शायद कैबिनेट ने लालू जी और कुछ अन्यों को जेल न जाना पड़े इसीलिए अध्यादेश पारित किया था. पर सब उलट-पलट हो गया. बाद में राहुल बाबा की टिप्पणी आयी कि मम्मी ने बताया कि उन्होंने ग़लत शब्दों का प्रयोग किया जो उन्हें नहीं करना चाहिए था. कॉन्ग्रेस में काफ़ी लोग राहुल बाबा को अगले प्रधानमंत्री के रूप में देखना चाहते हैं. अगर ऐसा हुआ, जिसकी संभावना बहुत ही क्षीण है, तो मम्मी से पूछ-पूछ कर ही युवराज सरकार चलायेंगे.

केंद्र में सत्ता में आने की दृष्टि से उत्तर प्रदेश की ८० सीटों पर सभी दलों की आंख लगी है. युवा मुख्यमंत्री अखिलेश यादव से प्रांत के लोगों को काफ़ी उम्मीदें थीं. लेकिन हाल में, मुज़फ्फरनगर में जो दंगे हुए और जानें गयीं उसमें किसका हाथ था, यह जानने के लिए क्या गुजरात की तरह मीडिया ने गुहार लगायी ? तीस्ता सेतलवाड कहां हैं ?

तेलंगाना विवाद एक और टेढ़ी खीर है. कॉन्ग्रेस को लगा कि उत्तर प्रदेश से नहीं तो शायद नये राज्य तेलंगाना की घोषणा से कुछ सीटों का फ़ायदा हो जायेगा. पर जिस तरह का विरोध सामने आ रहा है उसकी अपेक्षा कॉन्ग्रेस को नहीं थी. अभी चुनावों में काफ़ी समय है. जो कुछ हो रहा है वह आगाज़ मात्र है. नरेंद्र मोदी के कहे हर वाक्य के तुरंत अलग अर्थ निकालने में कुछ लोग माहिर हैं. "पहले शौचालय, फिर देवालय" का यह अर्थ कतई नहीं कि मंदिरों को गिरा कर शौचालय बना देना चाहिए. केवल एक ही अर्थ है कि पहले स्वच्छता फिर और कुछ.

●

इस घींधा मुश्ती के बीच कश्मीर में आतंकवादियों की घुसपैठ बदस्तूर ज़ारी है. दुश्मन अपने छापामार युद्ध में जुटा हुआ है, चाहे पाकिस्तान हो या फिर चीन. आप लाख शांति वार्ताएं करते रहिए. आपकी सुरक्षा में सेंध लगा कर सीमा के अंदर मीलों घुसपैठिए चले आते हैं, किसी का ध्यान नहीं जाता और पंद्रह दिनों तक कोई सुराग नहीं मिलता. देश की सुरक्षा की जिम्मेदारी आख़िर किसकी है, ख़ुफिया एजेन्सी, सेनाध्यक्ष, रक्षा मंत्री या प्रधानमंत्री की ?

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ अंक १२२ (अप्रैल-जून २०१३) में मालती जोशी जी की कहानी ''हम दुखियारे जन्म के'' बहुत अच्छी लगी. उनके लेखन की प्रंशसा करना यूं तो सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है किंतु इस कहानी में उन्होंने वह मुद्दा उठाया है जो अक्सर परिवारों में क्लेश का कारण बना रहता है. ''भाभी'' जैसे किरदार अच्छे-ख़ासे, हंसते-खेलते परिवार का माहौल विषाक्त किये रहते हैं. न स्वयं चैन से जीते हैं न दूसरों को जीने देते हैं. समाधान शायद कोई है ही नहीं इस समस्या का?

बाक़ी कहानियां, लघुकथाएं, कविताएं आदि सब 'कथाबिंब' के स्तर के अनुरूप हैं. संजय कुमार की लघुकथा 'प्रथम ग्रासे मक्षिका पात'" पढ़कर ध्यान आया कि यहां के विश्व प्रसिद्ध संग-मरमरी पर्यटन स्थल 'भेड़ाघाट' के नाविक भी सलीम ख़ान की ही तर्ज़ पर कई फ़िल्मों की शूटिंग के सच्चे-झूठे क़िस्से सुनाते रहते हैं.

ओमप्रकाश बजाज
बी-२. गगन बिहार, गुप्तेश्वर, जबलपुर-४८२००१ (म. प्र.)

▸▸ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून अंक समय से प्राप्त हो गया है. संतोष श्रीवास्तव की कहानी 'महाकुंभ' अच्छी बन पड़ी है. अपने देश के महान सांस्कृतिक परिदृश्य का यह एक चलचित्र ही है जैसे. किंतु वंदना शुक्ल की कहानी 'ख़ानाबदोश' इस अंक की सर्वश्रेष्ठ कहानी है. इस कहानी का कथानक लगभग अछूता है. ख़ानाबदोश जैसे ये मज़दूर लोग दूसरों के लिए घर बनाकर अपना घर तो जैसे अपने कंधे पर ही ढोते रहते हैं. इस कहानी के कथ्य शिल्प में एक अलग ताज़गी है. भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है. ... अमर स्नेह की कहानी 'बुझे रास्तों के पथिक' तो जैसे रुला ही गयी. यह फ़िल्म जैसी लगी. बहुत दिनों तक याद रहेगी. अशोक अंजुम की ग़ज़लें स्तरीय हैं. प्रसन्नता की बात है कि कथाबिंब की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैल रही है. मेरे ही शहर के ख्यातिलब्ध कथाकार चंद्रमोहन प्रधान एवं कवि श्रेष्ठ चंद्रसेन 'विराट' की प्रतिक्रिया उल्लेखनीय है. आशा है कि पत्रिका उत्तरोत्तर विकास की सीढ़ियां चढ़ती रहेगी.. आमीन!!

उदयशंकर सिंह 'उदय'
गीतांबरा, सहबाजपुर (दुर्गास्थान), उमानगर,
मुजफ़्फ़रपुर (बिहार)-८४२००४.

▸▸ 'कथाबिंब' नाम सार्थक करती हुई लगभग पांचों कहानियां, अपने कथ्य-शिल्य के साथ-साथ भाषा, शैली, और संवाद की दृष्टि से भी बहुत अच्छी लगीं. सभी में भरपूर कथारस और पठनीयता! पत्र के प्रारूप में लिखी डॉ. निरुपमा राय की 'ज़िंदगी की भंवर में', नारी-मन के विभिन्न मनोभावों को उकेरती है. नायिका की पीड़ा पाठक को सहभागी बना लेने में पूर्ण सक्षम है. इसमें नारी का समर्पण, समझौता और संघर्ष एक साथ बख़ूबी बुना गया है. बड़े कौशल से लेखिका ने इसे दु:खांत होने से बचा लिया है. वंदना शुक्ल की 'ख़ानाबदोश' मज़दूरों की ज़िंदगी की जीवंत कथा है, जो बिना किसी कथानक के भी कथारस भंग नहीं होने देती. लेखकीय टिप्पणियां... 'भविष्य उनके शब्दकोष में नहीं होता. वे अकारण सुखी होते हैं क्योंकि उनके दु:खों के बर-अक्स यही एकमात्र विकल्प हैं.' तथा 'इनके लिए जीवन कितना सहज होता है. ना पैदा होने का उत्सव ना मृत्यु पर हाहाकार, क्या बड़े-बड़े दार्शनिकों, ब्रह्मज्ञानियों ने इन्हीं से तो नहीं सीखा होगा जीवन की निस्सारता का पाठ ?' ... कथा के प्रभाव को बढ़ा देती हैं. 'महाकुंभ' संगम की रेत पर बसे एक अलमस्त महानगर का चलचित्र है. एक ओर पाश्चात्य भोगवाद की निस्सारता तो दूसरी ओर भारतीय नागा संतों का विषय-विरक्त उदात्त आत्म-ज्ञान. 'हम दुखियारे जनम के' सिद्धहस्त लेखिका मालती जोशी की एक पारिवारिक कहानी है जिसमें अपने अहं से ग्रस्त एक ऐसी नारी (गृहस्वामिनी) का चित्रण है, जो परिवार के हर प्राणी में खोट ढूंढ़ती रहती है और उसके

हर कार्य को स्वार्थ-प्रेरित समझती है. अपने होने को सिद्ध करने के क्रम में उसकी पूरी सोच नकारात्मक हो जाती है. 'सागर-सीपी' में डॉ. वेदप्रकाश 'अमिताभ' ने आज के लेखन के 'कृष्ण-पक्ष' को बड़ी साफ़गोई और साहसिकता से उजागर किया है. साथ ही स्पष्ट बताया है कि दिल्ली के साहित्य-माफ़ियाओं की मुट्ठी में आज सब कुछ बंद है – पद-पुरस्कार, पदवी, कविता, कहानी आदि की श्रेष्ठता के प्रमाणपत्र. लुघकथाएं – दौड़, खिलौना, बंदर का न्याय अच्छी लगी. अशोक अंजुम की ग़ज़लें भी.

शिवमूर्ति सिंह
डी-११, अलोपीबाग, इलाहाबाद-२११०१६

▶▶ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून-१३ अंक मिल गया था. गांव गया था, एक माह वहीं रह गया था, आया तो देखा. ... कहानियों का चयन अच्छा बन पड़ा है. आप चाहें तो इसे महिला कहानी विशेषांक भी कह सकते हैं. सारी की सारी कहानियां अच्छी बन पड़ी हैं. वैसे सागर-सीपी में डॉ. वेद प्रकाश 'अमिताभ' अच्छे लगे. वे एक सुलझे हुए इसान भी हैं. मैं उनका बहुत सम्मान करता हूं. इसलिए भी कि वे मेरे शोध-गुरू के अच्छे मित्र हैं.

डॉ. वासुदेव
धर्मशीला कुटीर, ग्राम-अरसंडे, पत्रा. बोड़ेया,
जिला : रांची-८३४००६ (झारखंड)

▶▶ 'कथाबिंब' ने तीन दशकों से भी अधिक की एक सुदीर्घ एवं सार्थक सारस्वत यात्रा की है. १९७९ से आज तक इसने अपने सिद्धांतों की रक्षा करते हुए जो साहित्य हिंदी जगत को दिया है वह इतिहास बन गया है. विधाओं का वैविध्य तो है ही. 'आमने-सामने' तथा 'सागर-सीपी' जैसे अंतरंग स्तंभ इस पत्रिका की पहचान बने हुए हैं. नवोदित, चर्चित, प्रतिष्ठित एवं स्थापित सभी साहित्यकारों को आपने इसमें सम्माननीय स्थान दिया है. साधुवाद!

डॉ. किशोर काबरा
५६२, जनतानगर, चांदखेडा,
अहमदाबाद-३८२४२४

▶▶ 'कथाबिंब' अंक 'अप्रैल-जून' १३ मिला. आदतन पहले 'कुछ कही, कुछ अनकही' पढ़ता हूं. जो संपूर्ण का सारांश लगता है. पत्रिका में कहानी कविता, आमने-सामने सागर सीपी के स्तंभों की रचनाएं देखीं. आपका चयन पत्रिका के रूप रंग अन्य बहुत सी पत्रिकाओं की तुलना में विशेष रुचिकर लगता है. कहानी का कथा शिल्प, विषय कहानीकार की विशेषता का परिचायक होता है. हर कहानी का अपना स्तर है और भावनाओं का उत्कृष्ट प्रयोग है. डॉ. निरुपमा राय और अमर स्नेह की कहानियां बिलकुल भारतीय परिवेश के जैसे हृदय तल पर बिछ गयी हों. अन्य कहानियां भी बहुत अच्छी लगीं. सभी लघुकथाएं भी कुछ न कुछ चुपके से कह जाती हैं. गीत, ग़ज़लें भी अच्छी लगीं.

हिंदी की तमाम स्तरीय पत्रिकाओं में 'कथाबिंब' का अपना अलग स्तर है जो सदैव पठनीय कहा जायेगा.

कैलाश बिहारी श्रीवास्तव
डी-१४, शहजादे कोठी,
रायबरेली-२२९००१,

▶▶ 'कथाबिंब' के १२२ अंक की प्रति जुलाई में पाकर ख़ुशी हुई. तीन दर्शकों से अधिक की पत्रिका की यात्रा सराहनीय है. संपादकीय 'कुछ कही-कुछ अनकही' से लेकर कहानियां, ग़ज़लें, गीत, लघुकथाएं और स्तंभ सब पठनीय हैं. एक अलग पीढ़ी कथाबिंब ने तैयार की है. बधाई. सीमित साधनों के साथ श्रेष्ठ प्रोडक्शन इसकी उपलब्धि है. काग़ज़ भी शानदार और आवरण पृष्ठ भी कलात्मक. शुभकामनाएं.

प्रो. फूलचंद मानव
२३९, दशमेश एंक्लेव, ढकौला, ज़ीरकपुर,
मोहाली-१६०१०४.

▶▶ 'कथाबिंब' १२२ अंक में कहानियों का चयन बढ़िया है. 'महाकुंभ' में प्रियदर्शिनी की आध्यामिकता एक ऐसे मोड़ पर ले जाती है, जहां पापों को धो दिया जाता है. 'ज़िंदगी के भंवर में' कहानी की सुमन के चरित्र को और उभारा जा सकता था, किंतु वह अंत तक बेचारगी की

शिकार है. क्या यही भारतीय स्त्री की नियति है? 'ख़ानाबदोश' में विवरण अधिक है, कहानी कम! मैडम का चिंतन अत्युक्ति है. 'हम दुखियारे जनम के' में भाभी को लगा रोग और विकृति का अंत आख़िर क्या? मालती जी की कुशाग्र बुद्धि भी आख़िर क्यों नहीं खोज पा रही? यह त्रासदी कब तक? 'बुझे रास्तों के पथिक' बुनी हुई ऐसी कहानी है जिसके तंतु बेहद कमज़ोर हैं. अशोक अंजुम, चिन्मय मिश्र व मोरवाल की कविताएं अच्छी लगीं. शरीफ़ जी की ग़ज़लें ध्यानाकर्षण करती हैं. दिलीप भाटिया जी की आत्मरचना स्तुत्य है. अन्य स्तंभ भी समीचीन हैं.

पत्रिका उत्तरोत्तर प्रगति करे. पूरी टीम को बधाई.

शिवनाथ शुक्ल

लिंक रोड, कैंप-२, भिलाई (छ. ग.)-४९०००१

▶▶ 'कथाबिंब' का अंक-१२२, अप्रैल-जून '१३ मिला. धन्यवाद. इससे पूर्व भी अंक सतत मिलते रहे हैं. यह निरंतरता आपके प्रबंधकीय एवं संपादकीय दायित्व की सफलता है. यही पत्रिका की उपलब्धि भी है. इस साहित्य के अभियान को अपनी ऊर्जा से सींचते रहने के लिए अभिनंदन. कहानियां अपने स्तर को बनाये हुए हैं, इसलिए पठनीय हैं. ग़ज़लें भी अच्छी हैं. पत्रिका के सभी स्तंभ पठनीय हैं.

एक संपूर्ण पत्रिका के संपादन एवं कुशल प्रबंधन के लिए बधाई.

सलीम अख़्तर

वहीद मंज़िल, अंसारी वार्ड, गोंदिया-४४१६०१.

▶▶ 'कथाबिंब' १२२ अप्रैल-जून' १३ अंक. 'कुछ कही, कुछ अनकही' में अंक की कहानियों पर संक्षिप्त समीक्षात्मक टिप्पणी कर देते हैं आप. कहानियों को समझने में ये सहायक होती हैं. फिर देश की नब्ज़ पर अंगुली रखते हैं – तकनीक से शुरू करके चुनाव, नक्सलवाद से होते हुए गिरते हुए रुपये पर आये हैं, तात्पर्य कि आप संपादकीय को साहित्य तक सीमित नहीं रखते हैं, हिंदी के अंक काम में लेते हुए भी आग्रही नहीं हैं.

पाठक-पत्रों को 'लेटरबॉक्स' शीर्षक देने में संकोच नहीं किया है. गुलज़ार की एक फ़िल्म के मुख्य पोस्टर में लेटरबॉक्स ही केंद्रित था. पहली ही कहानी 'महाकुंभ' (डॉ. संतोष श्रीवास्तव) एक सकारात्मक सोच की कहानी है. उन्होंने नागा साधुओं पर वस्तुपरक टिप्पणी की है और उनकी जितेंद्रियता को स्वीकारा है. वे नंगे रहते हुए उज्जवल हैं और देश के श्वेतवस्त्रों से आवृत्त कितने बापू नंगई दिखा रहे हैं. महाकुंभ के सिंधु में आपने प्रियदर्शिनी बिंदु को दिखाया है, बल्कि बिंदु की दृष्टि से सिंधु उपस्थित किया है. डॉ. निरुपमा राय की 'ज़िंदगी की भंवर में' सुमन की कहानी है, बाह्य सुख के बीच सुमन के दुःख की कथा है, पर वह दुःख से भागती नहीं है. वर्तमान को स्वीकार कर उसे बदलने का संकल्प करती है. 'ख़ानाबदोश' (वंदना शुक्ल) हाशिये पर जी रहे लोगों की गाथा है, भव्य भवन बनाने वाले मज़दूरों के जीवन को निकट से देखने-दिखाने का सद् प्रयत्न है. डॉ. मालती जोशी की कहानी 'हम दुखियारे जनम के' नकारात्मक सोचवालों का क्लोज़-अप है. कितना ही सुख हो, सुविधाएं हों पर उसमें दुःख ढूंढ़ लेना ऐसों का जीवन दर्शन है. अमर स्नेह की कहानी 'बुझे रास्तों के पथिक' एक यथार्थवादी रचना है. एक परिवार के निरंतर टूटने व बिखरने का वृत्तांत है. मायानगरी के अनुभवों की आंच में तपी सविता बजाज, इस बार गोता लगाकर अज़ीम मलिक रूपी मोती निकाल लायी हैं. डॉ. वेद प्रकाश 'अमिताभ', सागर-सीपी में निखर कर आये हैं. जमशेदपुर के डॉ. कुमुद के यात्रा वृत्तांतों के संपादन में मैं उनका सहयात्री रहा हूं. आमने-सामने जो वस्तुतः अपने सामने अर्थात 'आत्म साक्षात्कार' है, में दिलीप भाटिया के जीवन वृत्त से प्रेरित हुआ. इतने पास होते हुए 'कथाबिंब' से जानना हुआ, बधाई, पांच लघुकथाकारों व छः ग़ज़लकारों की भूमिकाएं गौण नहीं हैं, गद्य के रेगिस्तान के बीच ये नख़लिस्तान हैं, छोटा गद्य व छोटा पद्य मानस में संपुट की तरह है. ये विश्राम स्थलियां हैं जो दीर्घ सफ़र को सुखद बनाती हैं, किशोर काबरा की दोहा कृति की मैंने समीक्षा की है और विनय मिश्र मेरे समानधर्मा सहकर्मी रहे हैं. समीक्षाएं तो उत्तरकांड हैं.

हितेश व्यास

१ मारुति कॉलोनी, पंकज होटल के पीछे,
नयापुरा, कोटा (राजस्थान)-३२४००१.

कहानी

'महायोगी'

✍ हरिप्रकाश राठी

उसे मैं 'चिड़ोकला' कहूं 'चिड़कड़ा' कहूं 'चिड़ची' कहूं अथवा अन्य कोई संबोधन दूं, विशेषण कोई हो पर इससे वह नग्न सत्य नहीं बदलने वाला कि वह चिड़चिड़ा था. यह मिलते-जुलते, तरह-तरह के विशेषण तो ऑफ़िस में इसलिए प्रचलन में थे कि हमारे यहां कई प्रदेशों के लोग कार्य करते थे. यह विभिन्न संबोधन उनके अपने प्रदेशों में चिड़चिड़े लोगों के लिए प्रचलन में थे. अकारण मत-मतांतर न हो जाये अत: हम सभी ने 'चिड़ोकला' शब्द पर सहमति बना ली. अन्य विशेषणों की तुलना में इस विशेषण में जान थी, इसे बोलते हुए लगता मानो खड़ूसपन एवं बात-बात पर उखड़ने वाले किसी व्यक्ति का संपूर्ण चरित्र इसमें सिमट आया हो. कालांतर में यह विशेषण इतना लोकप्रिय हुआ कि सबकी जबान पर चढ़ गया.

हम इतने बुरे भी नहीं थे कि उसे अकारण ऐसा कहते. वैसे मैं इस निर्विवाद सत्य पर मोहर लगाता हूं कि सरकारी बाबुओं की जुबान में हड्डी नहीं होती एवं वे कुछ भी कह सकते हैं. फ़जीती करने में उन्हें असीम आनंद मिलता है पर इस संदर्भ में बात ऐसी थीं नहीं थी. उसका चेहरा-मोहरा, हरकतें कुछ ऐसी थी कि हम उसे ऐसा कहने को बाध्य हो गये थे. उसके स्वभाव पर ही नहीं, उसके रूप-रंग, हाव-भाव पर भी यह उपमा सटीक बैठती. वह तकरीबन पैंतीस वर्ष का होगा. उसका क़द ऊंचा, चेहरा लंबा एवं शरीर पतला था. धंसी आंखें, सूखे होठ एवं किसी अज्ञात क्रोध में खुले नथुने उसके मन की दास्तां बयां करते. उससे बात करते हुए ये नथुने कभी-कभी इतने गहरा जाते कि लगता कोई अदृश्य लावा बह निकलेगा. वह एक विशिष्ट तरह की चिंता में घुला लगता. उसकी आंखें एक गहरी उदासी में डूबी होतीं एवं ललाट के मध्य तीन सीधी रेखाएं जो बहुधा तनावग्रस्त चेहरों पर दृष्टिगत होती हैं, उभरी होतीं. लगता जैसे कोई घोर दु:ख कांटे की तरह उसके कलेजे में अटका है पर कोई न बताये तो पता भी कैसे चले. अनेक बार बात करते-करते वह अकारण बिखर जाता. उसके जबड़े चटकने लगते एवं दोनों कनपटियों पर गड्ढे पड़ जाते. कभी छठे चौमासे वह प्रसन्न भी दिख जाता तो इस बात की पूरी आशंका होती कि वह कब बिगड़ जाये. उसकी स्थिति उस बुझे कोयले की तरह होती जो बाहर शांत लेकिन भीतर आग लिये होता है. इसी व्यवहार के चलते उसे हम चिड़ोकला कहते तो कहां ग़लत थे? भूराराम चौधरी था ही ऐसा कि हम उसे इस संबोधन से पुकारें. वह हमारे यहां न होकर अन्य किसी ऑफ़िस में होता तो भी लोग ऐसा ही कहते. ऐसी उल्टी खोपड़ी को और कहा ही क्या जा सकता है?

हमारे ऑफ़िस में वह गत सात वर्षों से था. उसके स्वभाव के चलते किसी से उसके निकटस्थ संबंध नहीं थे. जहां तक बन पड़ता वह अकेला रहना पसंद करता. हम यानी हम सभी बाबू साथ लंच करते पर वह कभी हमें ज्वाइन नहीं करता. एक बार साहस कर भंडारी ने उससे कहा भी पर उत्तर सुनकर उसकी हिम्मत जाती रही. भंडारी के कहते ही भूराराम ने पहले तो उसे तीखी आंखों से ऐसे घूरा मानो कच्चा चबा जायेगा फिर तेज़ आवाज़ में बोला 'साथ लंच लेना ज़रूरी है क्या? अपनी-अपनी इच्छा है कोई कैसे ले.' भंडारी को सांप सूंघ गया. होम करते हुए हाथ जल गये. अपना-सा मुंह लेकर लंच पर आया तो उसकी दशा ऐसी थी मानो किसी फूल पर पाला गिर गया हो. इतना भारी दु:ख वह उगले बिना कैसे रहता. मुझसे मुखातिब होकर बोला 'मुरलीधर! कैसा बकवास बंदा है यह. इसका नाम भूराराम न होकर घूराराम होना चाहिए. जरा-सा लंच साथ लेने का क्या कह दिया, कुत्ते की तरह एड़ियां पकड़ लीं. क्या स्वभाव है? ऐसा रूखा-कठोर आदमी तो कहीं नहीं देखा. निहायत चिड़चिड़ा.' अपने मन की व्यथा उगलकर उसने मेरी ओर ऐसे देखा जैसे कोई अकारण पिटा व्यक्ति अपने हितैषी की ओर सहयोग की आकांक्षा से देखता है.

मैं चुप रहा. जब भी कोई दूसरे पर प्रतिकूल कमेंट

५ नवंबर १९५५:
एम. कॉम, सी. ए. आई., आई. बी, रिटायर्ड बैंक अधिकारी.

लेखन *: अब तक क़रीब ११० कहानियां लिखीं, क़रीब ५० कहानियां राष्ट्रीय स्तर के सामाचार पत्रों/पत्रिकाओं में प्रकाशित. राजस्थान साहित्य अकादमी की मासिक पत्रिका 'मधुमति' में अब तक दस कहानियां प्रकाशित. राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न अख़बारों में सामयिक, राजनैतिक एवं अन्य विषयों पर अब तक क़रीब ५० आलेख प्रकाशित.*

प्रकाशन *: 'अगोचर', 'सांप-सीढ़ी', 'आधार', 'पीढ़ियां, 'पहली बरसात', 'माटी के दिये', 'नेति-नेति' (कहानी संग्रह). कतिपय कहानियों का अंग्रेज़ी अनुवाद 'ऑन द विंग्स ऑफ कुरजां' एवं प्रतिनिधि कहानियां भी हाल ही में प्रकाशित हुई हैं. राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित राजस्थान के विशिष्ट कथाकारों का रचना संग्रह 'कहानी दर कहानी' में रचना प्रकाशित.*

सम्मान *: सृजनात्मक संतुष्टि संस्थान (जोधपुर), राजस्थान के यूनेस्को चैप्टर, शब्द संस्कृति (जोधपुर), अखिल भारतीय साहित्य परिषद द्वारा सम्मानित. पंजाब कला साहित्य अकादमी, उत्तर-पूर्व अकादमी द्वारा 'विशिष्ट साहित्यकार' सम्मान. भागलपुर हिंदी विद्यापीठ द्वारा विद्यावाचस्पति सम्मान.*

करता मैं अक्सर शांत रहता हालांकि यह ऐसी परिस्थिति नहीं थी. भंडारी की प्रतिक्रिया सर्वथा ज़ायज थी. अपने दीर्घ अनुभव से मैंने यह बात गांठ बांध ली थी कि अकारण पचड़े में पड़ना ही नहीं. इसी स्वभाव के चलते मेरा कोई शत्रु नहीं था.

'मुरली! तुझे तो राजनीति में होना चाहिए. एक-एक शब्द चबाकर बोलता है.' मेरे तटस्थ भाव को देख भंडारी बिफर पड़ा.

मैं कुछ कहता उसके पहले ही मोदी बीच में कूद पड़ा, 'तू ठीक कहता है भंडारी! भूराराम अजीब बंदा है. इससे बात करना सांप की बांबी में हाथ डालने जैसा है. जब देखो काम में घुसा रहता है. अभी दो माह पहले मुझसे भी उलझ पड़ा. मुझे मेरा स्टेपलर नहीं मिला तो मैंने उससे देने को कहा. बस इतनी सी बात पर भूरा उलझ पड़ा, अपनी चीज़ें संभालकर क्यों नहीं रखते और जाने क्या-क्या. मैंने कहा इतनी-सी बात पर बिगड़ते क्यों हो तो आंखें तरेर कर बोला, 'माइंड यूवर बिजनिस. डोंट डिस्टर्ब मी.' मेरी बला से. बुरे स्वभाव की भी सीमा होती है. यह तो सरकारी कार्यालय है एवं वह भी आयकर कार्यालय जहां अक्सर ग्राहक फंसा आता है, प्राइवेट नौकरी होती तो पुंगी बज जाती. अपनी व्यथा कहते-कहते मोदी उस दिन हांफने लगा था.

स्टाफ स्दस्यों से ही नहीं ग्राहकों से भी भूराराम के झगड़े होते रहते. एक बार तो बेबात एक ग्राहक पर चढ़ गया. बेचारे ने इतना-सा क्या कह दिया कि वह छोटे से कार्य के लिए दो बार आ चुका है तो भूरा चीख़ पड़ा, 'मेरे पास फाइल आयेगी तभी तो सैटल करूंगा. आप कमीश्नर से मेरी शिकायत कर दें.' ग्राहक का मुंह लटक गया. अपने काम में फंसा करदाता कहे भी तो क्या! धीरे-धीरे स्टाफ सदस्य, ग्राहक यहां तक कि हमारा इंचार्ज भी उसे चिड़ोकला कहने लग गये. सभी उससे एक निश्चित दूरी बनाकर चलते. कीचड़ में पत्थर मारकर कपड़े ख़राब करना किसे अच्छा लगता है.

किसी अन्य से तुलना करूं तो अपेक्षाकृत उसकी मुझसे अधिक बनती थी. मेरा डिफेंसिव एप्रोच यहां भी कारगर सिद्ध हुआ. मेरे कम बोलने की आदत एवं तटस्थ स्वभाव के चलते वह कभी-कभी मुझे रिस्पांड तो करता लेकिन मुझे भी आशंका बनी रहती कि ऊंट अन्य करवट न बैठ जाय. हम दोनों के बीच यह इंटरएक्शन ऑफ़िस कार्य अथवा जैसे कभी-कभी दो सहकर्मी आपस में चीजें देते-लेते हैं उतना ही था. मैं उससे एक विशिष्ट परिधि में ही बात करता. 'नथिंग एट द कास्ट ऑफ सेल्फ रेस्पेक्ट' मेरे स्वभाव का हिस्सा था.

इत्तफाक से इस बार ड्यूटी लिस्ट बदली तो मेरी सीट उसके ठीक बगल वाली थी. अब हम दोनों की टेबलें सटी होतीं. स्क्रूटिनी की सभी फाइलें हमारी टेबलों से होकर आगे बढ़तीं. इसी सामीप्य के चलते मुझे उसे क़रीब

से समझने का अवसर मिला. मैंने देखा काम करते-करते वह अनेक बार बिगड़ जाता. वही पुराना चिड़-चिड़ स्वभाव. वह मुझे तो कुछ नहीं कहता पर अपनी भड़ास ग्राहकों पर अथवा अधिकारियों पर निकालता. कभी वह काम में ऐसा निमग्न होता कि उसे यह तक ध्यान नहीं रहता कि पास कौन खड़ा है तो कभी अपलक दीवारों को देखता रहता. मैं अवसर नहीं देता अन्यथा इस बात की पूरी संभावना थी कि वह मुझसे भी लड़ पड़े. अनेक बार ग़ुस्से में अकारण उसके जबड़े यूं भिच जाते मानो कोई चिरसंचित व्यथा उसके भीतर से बहने को बेताब है. कुल मिलाकर यह तय था कि वह किसी ऐसी अरेचित वेदना से दग्ध है जो जब-तब उसे विचलित करती रहती है. अनियंत्रित वह ऐसा करने को बाध्य था. प्रारंभ में मुझे लगा मैं अपना कार्य बदलवा लूं पर इससे दूसरे सहकर्मी का फंसना तय था. मुझे उस पर ग़ुस्सा भी आता एवं रहम भी. आख़िर वह ऐसा क्यों करता है? उसकी वेदना क्या है? वह क्यों अपना मन किसी के साथ नहीं बांटता? यह भी हो सकता है उसका वैयक्तिक दु:ख प्रगट होते ही उसका आत्म-सम्मान ख़तरे में पड़ जाय? तो क्या हम किसी की पीड़ा को गोपनीय रखकर उसकी समस्या का समाधान नहीं कर सकते? भूराराम मेरे लिए पहेली बन गया. मैं इस गांठ को खोलने का जितना प्रयास करता वह और उलझ जाती. मुझे अनेक बार इस बात से भी कोफ़्त होती कि हम हमारे विश्वास का स्तर इतना ऊंचा क्यों नहीं उठाते कि कोई हममें विश्वास कर मन की गिरह खोल सके? हम अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी से विमुख क्यों हो जाते हैं? भूराराम मेरा सहकर्मी है एवं अगर मैं मेरे पड़ौसी का दु:ख दूर नहीं कर सकता तो लानत है मेरे विवेक, बुद्धि एवं सोच पर. हम इतने तटस्थ एवं संवेदनहीन क्यों बन जाते हैं?

मैंने मन ही मन निर्णय लिया कि मैं भूराराम की व्यथा जानकर रहूंगा. इतना ही नहीं जानने के बाद न सिर्फ़ इसे गोपनीय रखूंगा, उसके समाधान का भी प्रयास करूंगा. अगर उसका आत्म-सम्मान सुरक्षित रहा तो फिर वह क्यों मुझसे दु:ख नहीं बांटेगा? आख़िर वह भी तो किसी व्यथा से निरंतर जल रहा है. सुख मानवी अभिप्सा है. यहां कौन सुखी होना नहीं चाहता?

अब मैंने उसके स्वभाव को चुनौती की तरह लिया. अंधेरा दीया जलाने से ही दूर होता है.

मैंने कमर कस ली. इन दिनों मैं बढ़-चढ़कर उसके कार्य में मदद करता, यहां तक कि उसकी अनेक फाइलें मैं ही निपटा देता. ऐसा करने में मुझे एकाध घंटा अतिरिक्त बैठना पड़ता पर मैं इससे अप्रभावित होता. अब मेरा ध्येय भिन्न था. मैं जब-तब उसे देखता रहता एवं उसकी हर छोटी-छोटी ज़रूरतें जैसे पेन, पैंसिल, फाइल रिफरेंस बुक्स आदि की ज़रूरत पड़ती तो पहल कर उसे उपलब्ध करवाता. पहले हम दोनों की चाय अलग-अलग कप में आती, अब मैं डबल चाय मंगवाकर उससे आधी बांटता. इतना ही नहीं मेरे घर कोई स्पेशल डिश बनती अथवा कहीं से मिठाई आती तो मैं ऑफ़िस लाता एवं कोई न कोई बहाना कर इस स्वाद का सुख उसके साथ बांटता. ऑफ़िस में लंच तो अन्य स्टाफ सदस्यों के साथ लेता पर इस बात का पूरा ध्यान रखता कि भूल से भी उसकी बुराई न करूं. अन्य स्टाफ सदस्य प्रतिकूल टिप्पणी करते तो मैं प्रतिकार करता. मेरे बदले हुए व्यवहार से सभी आश्चर्यचकित थे लेकिन इसका अनुकूल परिणाम यह हुआ कि भूराराम का विश्वास मेरे प्रति दृढ़ होने लगा. मेरे लगातार सकारात्मक व्यवहार से भूराराम टूट गया. एक दिन किसी कार्य को लेकर वह फंस गया तो मैं उसके साथ दो घंटे अतिरिक्त बैठा रहा. उसकी समस्या का समाधान होने के पश्चात ही मैं अपनी सीट से उठा. उस दिन मैंने भूराराम की आंखों में आंसू तैरते देखे. अब लोहा गरम था. दूसरे दिन इतवार था, मैंने उसे रात्रिभोज हेतु आमंत्रित किया तो वह सहर्ष मान गया. इतना ही नहीं मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोला, 'व्यासजी! आपको कौन मना कर सकता है?' मैं भीतर तक भीग गया.

अगली शाम वह अपनी पत्नी माया के साथ घर आया तो मैंने एवं सुधा ने खुले दिल से उनका स्वागत किया. सुधा को मैंने कल ही सोने के पूर्व भूराराम के स्वभाव के बारे में बता दिया था. मैं स्वभावत: हर बात पत्नी के साथ बांटता था.

कुछ देर हम सभी ड्राइंगरूम में बेतकल्लुफ बातें करते रहे. मैंने देखा कि माया भी जब-तब बात करते हुए उखड़ जाती. एक विचित्र विषाद उसकी आंखों में उतर आता. बात करते-करते वह ऐसे वाक्यों का प्रयोग करती जो किसी चिरसंचित अवसाद का आभास देते. भाईसाहब सब भाग्य की बातें हैं, जो लिखा है मिटाया नहीं जा सकता, जोड़े तो ऊपर से आते हैं हम कर ही क्या सकते हैं आदि वाक्यों का वह निरंतर प्रयोग कर रही थी. माया गोरी-चिट्टी

थी, नाक-नक्श भी सुंदर थे पर आंखों के नीचे बने गड्ढे एवं कोटरों का कालापन उसकी व्यथा का बयान कर रहे थे. मुझे लगा विवाह के सात वर्ष पश्चात भी वे नि:संतान है शायद इसीलिए माया उदास दिखती है. इन दिनों हमारे दोनों बच्चे भी समर वेकेशन के चलते ननिहाल गये हुए थे अत: आज हम दोनों ही थे.

डिनर पर हम ऑफ़िस की एवं इधर-उधर की बातें करते रहे. सुधा भी माया से जब-तब बतियाती रही. कुल मिलाकर हमारी आज की मुलाकात अच्छी रही. जाते हुए उसने भी हमें अगले इतवार को आमंत्रित किया एवं धीरे-धीरे यह क्रम हो गया. अंतराल भी सात से तीन दिन के बन गये. अब हम अक्सर मिलने लगे.

एक शाम वे फिर हमारे यहां आमंत्रित थे. अब मेरी नज़र मेरे ध्येय पर थी. आज डिनर के पश्चात सुधा माया को लेकर ऊपर कमरे में चली गयी. हम दोनों ड्राइंगरूम में बतियाते रहे. दोनों नीचे आये तो माया का चेहरा आंसुओं से तर था. मैं चौंका तो सुधा ने इशारे से चुप रहने को कहा. मौके की नज़ाकत देख मैंने कुरेदना उचित नहीं समझा. आश्चर्य! भूराराम भी इस दरम्यान शांत रहा.

रात सुधा ने मुझे जो कुछ बताया वह सुनकर मैं हैरान रह गया. मुझे कोफ़्त भी हुई एवं गर्व भी. कोफ़्त इस बात पर कि लोग पिसते चले जाते हैं लेकिन अपनी व्यथा-व्याधियां मित्र-रिश्तेदारों के साथ नहीं बांटते एवं गर्व इसलिए कि सचमुच भारतीय स्त्री कितनी महान है. उसकी महानता, उसके संघर्ष-पथ, उसके धैर्य एवं सहनशीलता को शब्दों में बद्ध नहीं किया जा सकता. उसकी ऊंचाई के आगे पुरुष कितना बौना है? सुधा ने माया से जब कहा कि तुमने यह बात अपने घर वालों को क्यों नहीं कही तो उसका जवाब था कि ऐसा करने से यह अपनी आंखों में गिर जाते. मैं इस स्थिति में हूं तो यह मेरे पूर्वजन्म का ही दोष होगा.

सुधा के बयान ने मेरी अंतरात्मा को झकझोर दिया. ओह! हम अकारण ही भूराराम को ग़लत समझते रहे. उसकी व्यथा कितनी भयावह थी.

अकर्मण्य पुरुष को सिद्धि नहीं मिलती. अब मैंने इस समस्या का बीड़ा उठाया. मैंने भूराराम से इस संदर्भ में खुली बात की एवं उसे साईकोथेरिपी यानी मनोचिकित्सा करवाने की सलाह दी. पहले तो वह हिचकिचाया पर मेरे दृढ़-आग्रह के चलते इंकार नहीं कर सका. मैंने जब बताया कि शहर के प्रख्यात मनोचिकित्सक डॉ. भूषण मेरे निकटस्थ मित्र हैं तो वह मान गया. उसकी साईकोथेरेपी के दरम्यां एक ऐसा लोमहर्षक हादसा उजागर हुआ जिसे सुनकर किसी की भी रूह कांप जाय. बचपन में भूराराम ने अपनी बहन का बलात्कार होते देखा था एवं यह बलात्कार स्वयं उसके चाचा ने किया था. उस समय वह मात्र सात वर्ष का था. उसकी बहन चिल्लाती रही पर वह कुछ न कर सका. चाचा का घर में दबदबा था एवं उसकी धमकी के चलते यह रहस्य अप्रगट ही रहा. इस घटना से भूराराम बुरी तरह एक दहशत से ग्रसित हो गया. वह एक ऐसे मानसिक हादसे का शिकार हो गया जिसका जिक्र अत्यंत दु:खदायी है.

साईकोथेरेपी के पश्चात भूराराम के व्यवहार में अप्रत्याशित परिवर्तन हुए. अब वह खिला-खिला रहने लगा. एक दिन स्वयं चलकर लंच के समय हमारे बीच आया एवं कहने लगा आज से वह भी सबके साथ लंच लेगा. स्टाफ के सभी सदस्य आश्चर्यचकित थे.

इस बात को भी एक वर्ष बीत गया. आज लंच में भूराराम टिफिन के साथ मिठाई का पैकेट लेकर आया तो ऑफ़िस में प्रसन्नता का सोता बह गया. हालांकि मैं इस भेद को जानता था पर मैं चाहता था कि इस सूचना को देने का प्रथम सुख भूराराम को मिले. मैं स्वयं उसकी प्रतिक्रिया देखकर आनंदमग्न होना चाहता था. उसने जब कहा कि उसके यहां सात वर्ष बाद पुत्र जन्म की किलकारी गूंजी है तो सभी के हर्ष का पारावार न रहा. यह सूचना देते हुए भूराराम की आंखों से आंसू बह निकले. उसकी दशा ऐसी थी मानो कोई हिमखंड पिघलकर कल-कल बहती सरिता में जा मिला हो. सभी जब उसे बधाई दे रहे थे मैं चुपचाप अपनी सीट पर चला आया.

आज मैं कितना प्रफुल्लित था! मेरे हृदय से असंख्य हाथ निकलकर ईश्वर का आभार प्रगट करने लगे थे. आज मैंने जाना दूसरों की व्यथा दूर कर उन्हें सुख से सराबोर करने में कैसा प्रगल्भ, अनिवर्चनीय सुख मिलता है.

यह तथ्य भी पूरे ऑफ़िस में मैं ही जानता था कि भूराराम गत वर्ष तक मानसिक नुपंसकता का शिकार था. एक ऐसी नपुंसकता जिसने उसे एवं माया को पूरे सात वर्ष तक वैवाहिक सुख से वंचित रखा. मन ही मन इन महायोगियों को नमन् कर मैं अपने कार्य में मशगूल हो गया.

सी १३६, प्रथम विस्तार,
कमला नेहरू नगर, जोधपुर (राज.)
मो.: ९४१४१३२४८३

कहानी

पंद्रह अगस्त

शिव प्रताप पाल

मेहनती आज भी रोज़ की तरह सुबह-सुबह खटाल (वह स्थान जहां से रिक्शेवाले दिन भर के लिए रिक्शे किराये पर लेते हैं) से रिक्शा लेकर चौराहे की ओर चल पड़ा. आज चौराहे पर कुछ बच्चे तिरंगा झंडा बेच रहे थे. मेहनती को याद आया कि आज शायद झंडा लहराने का दिन है. उसे इतना तो मालूम था कि साल भर में एक या दो बार झंडा लहराया जाता है, उसे यह भी मालूम था कि इस दिन बच्चों को मिठाइयां बांटी जाती हैं. इसके अलावा उसे कुछ मालूम न था, परंतु दो-तीन साल पहले उसने कहीं सुना था कि हम लोग अंग्रेज़ों की गुलामी और अत्याचार से आज़ाद हुए थे, इसीलिए झंडा लहराया जाता है, ख़ुशी मनायी जाती है.

मेहनती को अंग्रेज़ों, गुलामी और उनके द्वारा किये गये अत्याचारों के बारे में ज़्यादा तो मालूम न था, वह तो अनपढ़ और गंवार आदमी था, वह तो 'इतिहास' शब्द से भी अनभिज्ञ था. परंतु अंग्रेज़ों के अत्याचार के कुछ क़िस्से जबसे उसने कहीं सुन लिये थे, तबसे उसका मन अंग्रेज़ों के प्रति घृणा से भर गया था. उसने तब से चर्च के आसपास जाना तक छोड़ दिया था, जहां पर कभी-कभी मुफ़्त में खाना मिलता था, ग़रीबों को मुफ़्त में दवाएं मिलती थीं. जाड़ों में कभी-कभी कंबल भी बांटे जाते थे. मेहनती ने वहां जाना इसलिए छोड़ दिया था क्योंकि वहां बांटने वाले कभी-कभी अंग्रेज़ हुआ करते थे और उसने सुन रखा था कि वे विदेश से आते थे.

मेहनती की नज़र एक आठ-नौ साल के बच्चे पर जाकर टिक गयी, जो झंडे बेच रहा था. चेहरा मुरझाया हुआ, आंखें धंसी हुईं और उनके नीचे काले घेरे, शरीर पर केवल एक गंदी कमीज़ और नेकर पहने हुए. पैरों में एक दो घाव भी नज़र आ रहे थे, पर स्पष्ट नहीं हो पा रहा था कि वे चोट के हैं या फोड़े–फुंसियों के. वह बालक आवाज़ लगा रहा था — 'झंडे ले लो, झंडे ले लो, तीन रुपये में झंडे ले लो.'

मेहनती देख रहा था कि बच्चे के सामने एक चमचमाती कार आकर रुकी और उसमे से लकदक कपड़े पहने एक मेमसाहब उतरी और उस बच्चे से चार रुपये में दो झंडे ख़रीदने के लिए मोलभाव करने लगी. मेमसाहब के दोनों बच्चे कार में ही बैठे रहे. लाख कोशिश के बावजूद लड़का झंडे का मूल्य कम नहीं कर रहा था, खीझकर मेमसाहब बिना झंडा लिये ही चल दी और कार में बैठे अपने दोनों बच्चों से बोली — 'यहां झंडे महंगे हैं, आगे किसी और जगह से लेंगे, कार में बैठे बच्चों का चेहरा मुरझा गया, फिर भी वे चुप रहे और गाड़ी, हॉर्न बजाते आगे बढ़ गयी.'

मेहनती चौराहे पर रिक्शा लगा कर सवारी का इंतज़ार कर रहा था, तभी उसे चाय पीने कि इच्छा हुई, वैसे मेहनती चाय पीने का शौकीन न था, लेकिन कभी-कभार जब वह ठीक पैसे नहीं कमा पाता था, तो उसे रोटी भी चाय के साथ घूंट-घूंट कर खानी पड़ती थी. आज चूंकि अभी तक सवारी नहीं मिली थी, उसने सोचा, चाय पीकर वह दोपहर तक रह लेगा.

परंतु मेहनती ने ग़ौर किया कि आज तो चाय का कोई ठेला या गुमटी नहीं थी, उसने फिर नज़र दौड़ायी तो कुछ गुमटियां टूटी सी नज़र आयीं. तभी 'ग़रीबदास' दिखायी पड़ा. 'ग़रीबदास' भी उसी चौराहे पर चाय का ठेला लगाता था. मेहनती कभी-कभी उसकी दुकान पर चाय पी लेता था. वैसे तो अपने नाम के अनुरूप 'ग़रीबदास' भी ग़रीब ही था और चाय का ठेला लगाकर वह अपना तथा अपनी पत्नी और दो बच्चों का पेट किसी तरह पाल रहा था. उसका बड़ा बेटा जो नौ वर्ष का था, वह भी दुकान के काम में हाथ बंटाया करता था. परंतु फिर भी मेहनती 'ग़रीबदास' को सदैव 'सेठ' कहकर ही बुलाता था.

मेहनती ने ग़रीबदास को नमस्कार किया और पूछा — 'का बात है सेठ, आज दुकान नहीं लगायी?' ग़रीबदास ने दुःखी मन से जवाब दिया — 'का बताई भैया आजकल सरकार हम लोगन का जिया नहीं देय चाहत, कल हल्लागाड़ी

आयी रही, और हमरे पेट पर लात मार कर चली गयी, हमरे चाय के ठेले को पलट दिया, कांच के बर्तन तोड़ दिये. अऊर तो अऊर सारा छोट–मोट सामान भी लाद ले जात रहेन. बड़ी मिन्नत करें पेर छोड़ दिये, तब भी दो सौ रुपइया देय का पड़ा. अब तुमही बताओ का करें, का कमायें, का खायें. आसपास के सब गुमटी और ठेले वालों का यही हाल है. जब हम पूछे कि माई-बाप का ग़लती हो गयी? तो कहने लगे कि — 'सड़क पटरी पर दुकान लगावत हो. सड़क का तुम्हारे बाप की है. पूरी सड़क पर कब्ज़ा कर लिये हो. हम समझ नहीं पावत हैं कि ठेला लगाये के कहीं सड़क कब्ज़ा हो सकत है.'

'दुसरी ओर तनी देखो तो, कि चौराहे के आसपास कितनी दुकानें खुल गयी हैं, अउर पूरा शहर जानत है कि इ सब ज़मीन जबरन कब्ज़ा की गयी है. विधायकजी के आदमी ज़मीन के पलाटिंग करके ऊंचे दाम पर बेच दिये. अउर तो अउर विधायकजी उही ज़मीन पे आपन पांच सितारा होटल खोल लिये. मगर अपनी क़िस्मत में तो मार अउर गाली खाय के लिखल हौ. कबहूं पुलिस से तो कबहूं गुंडा लोगन से जो आये दिन चंदा लेय ख़ातिर या हफ़्ता वसूले ख़ातिर आवत हैं. अउर अगर हम न दे पाये तो मारपीट तक करत हैं. हमार लोगन का तो जीना ही दूभर हो गया है, यह कहकर, ग़रीबदास आगे बढ़ जाता है.

तभी चौराहे पर एक स्कूली रिक्शा आकर रुकता है और ढेर सरे बच्चे उसमें से उतर कर झंडा ख़रीदते हैं और रिक्शे पर बैठकर चल देते हैं. बच्चों ने एक झंडा रिक्शे के हैंडिल पर भी लगा दिया और 'भारतमाता की जय' और 'जय हिंद' बोलते चले गये.

मेहनती 'देशभक्ति' शब्द के अर्थ से भी अनजान था. परंतु झंडे के प्रति बच्चों का उल्लास देखकर उसे भी कुछ सूझा, वह भी बच्चों की तरह, कुछ क्षण उल्लास और उमंग से जीना चाहता था, उसने भी झटपट एक झंडा ख़रीदा, रिक्शे के हैंडिल पर लगाया. उसका मन भी ज़ोर से 'भारतमाता की जय' का नारा लगाने को करने लगा, जो उसने अभी-अभी बच्चों के मुख से सुना था. परंतु झिझक के कारण वह ऐसा करने का सहस न कर सका.

तभी दो आदमी आकर रुकते हैं और मेहनती से रेलवे स्टेशन चलने के लिए कहते हैं, मेहनती तैयार हो जाता है. वे किराया पूछते हैं. मेहनती कहता है — 'बारह

जन्म : १९७५ ,

शिक्षा : एमसीए, एम. ए., एल. एल. बी., बी. एड.

प्रकाशन : *वीणा, हिम्प्रस्थ, वर्तमान साहित्य, गिरिराज, हिमाचल दस्तक, गांव की नयी आवाज़, अवसर, कश्मीर टाइम्स, सुमन सागर, शब्द मंच आदि पत्र-पत्रिकाओ में रचनाएं प्रकाशित.*

संप्रति : *संगणक विज्ञान विषय का अध्यापन.*

रुपईया होत हैं साहेब, सुबह का बखत है, अभी बोहनी भी नहीं भई, आप जो देंगे ले लूंगा.' वे तैयार हो गये. दोनों ही पढ़े लिखे नौकरी वाले दिख रहे थे. दोनों के पास मात्र एक-एक सूटकेस था. मेहनती उन्हें लेकर आगे बढ़ रहा था. दोनों आपस में बात कर रहे थे कि 'आज पंद्रह अगस्त है, आज़ादी का दिन है, और पूरे शहर में पानी नहीं आया, बिजली का भी बुरा हाल है, सड़कें बदहाल हैं, पूरे शहर में गंदगी का अंबार है, न जाने इस देश का क्या होगा.'

स्टेशन पहुंचकर मेहनती सवारी उतार रहा था तभी उसके रिक्शे पर पुलिस वालों की लाठी पड़ी — 'साले..... हरामख़ोर..... जल्दी हटा रिक्शा यहां से, जाम लगा दिया यहां पर.' मेहनती बोला — 'साहब, हटाता हूं, ज़रा सवारी तो उतार लूं.' पुलिस वाला बोला — 'अबे चल जल्दी भाग नहीं तो टायर से हवा निकाल दूंगा.' दूसरे पुलिसवाले ने तब तक अपनी लाठी उसके पहियों की तीलियों के बीच में डाल दी. वह तीलियों को मोड़ना-तोड़ना चाहता था. मेहनती ने हाथ-पांव जोड़कर पुलिसवालों से पीछा छुड़ाया. सवारी ने भी जल्दी से उसे बीस रुपये अदा किये.

मेहनती ने देखा कि पुलिस दूसरे रिक्शेवालों को भी

परेशान कर रही थी और बड़ी–बड़ी चमचमाती कारें रोड पर खड़ी हैं और जाम की स्थिति पैदा कर रही हैं, पर पुलिस वाले उनके पास तक फटक नहीं रहे.

मेहनती आगे बढ़ा, वहां उसे बनारसी मिला. बनारसी रिक्शे पर बैठ गया और घर ले चलने का इशारा किया. बनारसी को वह पिछले तीन बरस से जानता था, जब से उसने इस शहर में पेट भरने की ख़ातिर रिक्शा चलाना शुरू किया था. बनारसी की लाल चौक पर पान की दुकान थी, जिसे उसने किराये पर ले रखा था, उसमें वह पान के अलावा, बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू, चूना, माचिस, टॉफ़ी, बिस्कुट व चुइंग-गम इत्यादि भी बेचा करता था, परंतु कुछ महीनों से उसकी दुकान बंद थी.

मेहनती ने बनारसी से दुकान न खुलने का कारण पूछा तो बनारसी ने भरे मन से बताया की उसकी दुकान बंद करा दी गयी है, क्योंकि कोई सरकारी कानून बना है कि स्कूलों और कॉलेजों के आसपास बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू, इत्यादि नहीं बिक सकेंगे और बनारसी की दुकान से सौ मीटर कि दूरी पर एक स्कूल था. हालांकि बनारसी कभी-भी स्कूली बच्चों को टॉफ़ियों, बिस्कुटों और चुइंग-ग़मों के अतिरिक्त और कुछ नहीं बेचा करता था, परंतु फिर भी उसकी दुकान बंद करा दी गयी.

बनारसी ने मेहनती को बताया कि उसे दुकान बंद होने का ज़्यादा दुःख नहीं हुआ था और उसने सोचा था कि चलो कुछ समय बाद दूसरी किसी जगह पर दुकान खोल लेगा. पर उसे दुःख तब हुआ, जब दो महीने बाद उसी दुकान में देशी शराब का ठेका खुल गया और उसी के पास एक अंग्रेज़ी शराब की दुकान भी खुल गयी और ज़ोर शोर से चलने लगी. बनारसी ने बताया कि उसने तो स्कूल के बच्चों को भी बीयर या शराब ख़रीदते देखा है.

मेहनती ने बनारसी से पूछा, 'फिर आजकल, ज़िंदगी कैसे चलती है? पेट कैसे भरता है?' बनारसी बोला — 'क्या बताऊं भैया, चौक वाली दुकान बंद कर देने के बाद मैंने पुराने बस स्टैंड के पास दुकान खोल ली, पर उस पर भी बोर्ड टंगवा दिया गया, जिस पर लिखा था — 'सिगरेट बीड़ी और तंबाकू से कैंसर होता है', और धीरे–धीरे उस दुकान से भी कमाई कम होने लगी. धंधा चौपट हो गया.

बनारसी आगे बोला — 'जो लोग पहले सिगरेट, बीड़ी, तंबाकू का नशा करते थे, आज दारू, शराब का नशा करने लगे हैं और हम जैसे लोग बेरोज़गार हो गये. अब तुम्ही बताओ क्या करें. अब तो रोज़ सवेरे लेबर चौराहे पर खड़ा हो जाता हूं, अगर कोई काम मिल जाता है तो, दिन भर में सौ रुपया कमा लेता हूं और अगर नहीं मिला तो घर वापस, खाली हाथ और देखो आज कोई काम नहीं मिला, घर वापस जा रहा हूं.

मेहनती ने बनारसी के घर के सामने रिक्शा रोका, बनारसी ने पांच रुपये का नोट बढ़ाया, मेहनती की इच्छा उसे लेने की न हुई; मगर वह कोई धन्ना सेठ तो था नहीं, अतः उसने पैसे ले लिये.

झंडा अभी भी मेहनती के रिक्शे पर लहरा रहा था. सूरज सर पर चढ़ आया था. मेहनती ने सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे रिक्शे को खड़ा किया. रिक्शे की सीट के नीचे पड़ी कपड़े में बंधी रोटी और अचार निकाला और खाने लगा. उसने तीसरा कौर मुंह में डाला ही था कि फिर रिक्शे पर डंडा पड़ा. उसने देखा कुछ पुलिसवाले थे. मेहनती बोला — 'का ग़लती भई माई-बाप.' पुलिसवाले बोले — 'चल भाग यहां से, जल्दी रिक्शा बढ़ा. मंत्री जी का काफिला गुज़रने वाला है. हमारी नौकरी मत खा, जल्दी हटा रिक्शा यहां सेठ.'

मेहनती ने रोटियां वापस कपड़े में लपेटीं और फटाफट रिक्शा आगे बढ़ाया. वह सोचने लगा कि रोटी तो वह ठीक से खा न सका, किसी की नौकरी भला क्या खायेगा.

तभी उसको एक और सवारी मिल गयी, वह उसे लेकर रवाना हो गया. जब वह शहीद मैदान की तरफ़ से गुज़र रहा था, तो वहां से भाषण की आवाज़ आ रही थी. 'भारतमाता की जय' भी बोला जा रहा था. शायद कोई विशाल सभा हो रही थी. मैदान के बाहर तक भीड़ जमा थी. सवारी को गंतव्य तक छोड़कर जो कि शहीद मैदान के बगल की गली में था, मेहनती वापस शहीद मैदान की तरफ़ आया और वहीं बाहर ही एक किनारे रिक्शा लेकर खड़ा हो गया, उसने सोचा, वह भी थोड़ा भाषण सुनेगा और हो सकता है, अगली सवारी भी उसे यहां से मिल जाये.

भाषण की आवाज़ उसे स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी. '....आज हमारा देश कितनी तरक्की कर रहा है. हमारी सेनाएं मज़बूत हैं, आज हमारे पास क्या नहीं है? आज हमारे पास रॉकेट है, तोप है, मिसाइल है, परमाणु बम

है..... अगर आज हमारा पड़ोसी देश आंख उठाकर भी देखेगा तो हम उसे करारा जवाब देंगे. आज हमारे पास मोबाइल है, कंप्यूटर है, हवाई जहाज है.... आज हम भी चंद्रमा पर पहुंच चुके हैं, आज हमारा देश बहुत तरक्की कर रहा है. ....हमारा देश खेलकूद में भी बहुत आगे है. हमारे देश में भी सभ्य लोगों का खेल 'क्रिकेट' खेला जाता है. केवल खेला ही नहीं जाता, बल्कि हमारे बच्चे और बड़े सभी घर बैठे इस खेल को टीवी पर देख पाते हैं. हमारी सरकार दूरदर्शन और रेडियो के माध्यम से सभी का यह शौक़ पूरा कर रही है. हमारा देश वास्तव में बहुत महान है. हमें अपने देश पर बहुत गर्व है, और हर भारतवासी को गर्व होना चाहिए.....'

भाषण चल रहा था, लेकिन मेहनती का मन पता नहीं क्यों विचलित हो रहा था. सड़क की दूसरी पट्टी पर कुछ भिखारी कटोरा लिये बैठे थे, उनकी सुध लेने वाला वहां कोई नहीं था. उनमें से एक भिखारी अपना कटोरा लिये इस पट्टी की ओर आया और कई लोगों के सामने कटोरा बढ़ा कर याचना की. किसी ने उसे कुछ नहीं दिया, एक व्यक्ति ने उसे मज़ाक में झंडा देने की कोशिश की, भिखारी उसे बिना लिये ही आगे बढ़ गया. मेहनती ने रिक्शा आगे बढ़ाया और थोड़ी दूर पर स्थित एक छोटे से महादेव मंदिर के पास पहुंचा. मंदिर के पास एक नीम का पेड़ था, जहां कभी-कभार रिक्शेवाले अपना रिक्शा खड़ा कर सुस्ता लेते थे या फिर अपने साथ लायी गयी रोटी खाकर वहीं सवारी का इंतज़ार करते. बगल में थोड़ी दूर पर ही रिक्शा स्टैंड था, पर वहां पर कब्ज़ा हो चुका था और तमाम दुकानें अस्थायी तौर पर खुल गयी थीं. मेहनती ने फिर सीट के नीचे पड़ी रोटियां निकालीं, पर तभी दूसरी सवारी मिल गयी. वह रोटियों को वापस सीट के नीचे रखकर सवारी को बिठा कर चल दिया. सवारी को बर्तनवाली गली की ओर जाना था. वह भी पढ़ा-लिखा नौकरी वाला आदमी लग रहा था. सामान के नाम पर उसके हाथ में एक बैग था और दूसरे हाथ में मोबाइल, जिसमें रेडियो चल रहा था. *'जहां डाल-डाल पर सोने की चिड़ियां करतीं हैं बसेरा, वो भारत देश है मेरा.....'* मेहनती ने नज़रें उठाकर चारों ओर देखा. उसे गीत के बोल सत्य प्रतीत हुए. चारों तरफ़ ऊंची इमारतें और बंगले उसे यह एहसास दिला रहे थे कि यहां सचमुच सोने की चिड़िया (अमीर लोग) वास करती हैं. ग़रीबों के लिए यहां कोई जगह नहीं है.

गीत के समाप्त होते ही समाचार शुरू हो गये. उसने समाचारों में सुना कि कुछ शहरों में बम धमाके हुए हैं. कई लोगों की मौत हो गयी है, और काफ़ी संख्या में लोग घायल भी हुए हैं. मेहनती ने सवारी को ठिकाने तक पहुंचाया और उससे किराया लिया. उसे ज़ोरों की भूख लग रही थी, क्योंकि वह खाना नहीं खा सका था. उसने रिक्शा घर की तरफ मोड़ा, सोचा कि अब घर चलकर खाना खायेगा. तब तक बम धमाकों की ख़बर आग की तरह फैल चुकी थी. सड़कों पर जगह-जगह पुलिस तैनात थी. जगह-जगह तलाशी ज़ारी थी. घंटाघर चौराहे पर पहुंचते ही पुलिसवालों ने उसका रिक्शा रोका और उसकी तलाशी लेने लगे. सीट के नीचे उन्हें कपड़े में बंधा कुछ दिखाई दिया. पुलिस वाले ने कहा — 'इसमें क्या लेकर चलता है, कहीं इसमें बम तो नहीं.' मेहनती कुछ न बोला. पुलिसवाले ने उसे खोलकर दिखाने के लिए कहा. मेहनती ने कहा कि वह नहीं दिखायेगा, वह ख़ुद देख ले. पुलिसवाले ने गाली देते हुए झट से कपड़े में लिपटी चीज़ निकालनी चाही. मगर यह क्या उसमें तो सूखी रोटी और अचार का टुकड़ा था. पुलिसवाला चिल्लाया, 'क्यों बे .... नोट पानी नहीं है क्या.' अब मेहनती को समझ में आया कि वे बम नहीं बल्कि उसकी मेहनत की कमाई खोज रहे थे. किसी तरह रो-गाकर उसने पुलिसवालों से पीछा छुड़ाया.

रिक्शा फिर उसने अपने घर की तरफ़ बढ़ा दिया. घर भी क्या, झोपड़पट्टी में एक टेंट था जिसका किराया वह साठ रुपये महीने देता था. उसमें केवल इतनी जगह थी कि वह लेट सकता था तथा अपना लोहे का पुराना संदूक रख सकता था, जो अपने गांव से ले आया था. उसी में उसका कपड़ा लत्ता और सामान रहता था.

किनारे एक प्लास्टिक का गंदा-सा बड़ा डिब्बा रखा था, जिसमें वह पानी भर कर रखता था. उसने कपड़े में बंधी रोटी फिर खानी चाही, परंतु उसे याद आया कि आज तो उसने प्लास्टिक के डिब्बे में पानी ही नहीं भरा. सुबह जल्दी-जल्दी में वह पानी भरना भूल गया था.

अब तो पानी देर शाम को ही आयेगा और उसके लिए भी लंबी लाइन लगानी पड़ेगी और हो सकता है, उसका नंबर आते-आते नल ही बंद हो जाये. उसने सोचा कि बगल के टेंट में रहनेवाले 'खोमचालाल' के यहां से पानी ले आये. खोमचालाल का असली नाम कोई नहीं जानता. उसे तो सब इसी नाम से पुकारा करते थे. क्योंकि वह खोमचा लगाकर अपना और अपनी घरवाली का पेट पालता था. उसका एक बेटा भी था, मगर पिछले साल

टी. बी. का शिकार होकर मर गया.

मेहनती ने टेंट के बाहर से खोमचालाल को आवाज़ देकर एक लोटा पानी मांगा. खोमचालाल अंदर था, उसने घरवाली से कहकर उसे बुलाया. पूछने पर खोमचालाल ने मेहनती को बताया कि आज तेज़ बुख़ार से पीड़ित होने के कारण वह खोमचा लगाने न जा सका. मेहनती को चिंता हुई कि आज खोमचालाल व उसकी घरवाली खायेंगे क्या? उसने इस बारे में खोमचालाल से बात की तो उसने बताया कि आज पुराने शिवाले पर विशाल भंडारा था, खोमचालाल की पत्नी ने वहीं पर खा लिया था और खोमचालाल के लिए भी वहीं से खाना मांग लायी थी. मेहनती उसके घर से एक लोटा पानी मांग लाया और अपने टेंट में बैठकर रोटियां खायीं. रोटियां पूरी तरह सूख चुकी थीं, परंतु वह मेहनती के लिए कोई नयी बात न थी. उसे तो सूखी रोटियां खाने कि आदत पड़ चुकी थी.

खाना खाकर वह वापस रिक्शा लेकर खटाल की तरफ़ चल पड़ा. उसे रोज़ शाम को खटाल पर रिक्शा जमा करना पड़ता था और दिन भर का किराया पच्चीस रुपये भी देना पड़ता था. और रोज़-रोज़ सुबह फिर खटाल से रिक्शा ले जाना पड़ता था. खटाल मालिक वैसे तो अच्छा आदमी था. कभी दु:ख मुसीबत में किराया भी नहीं लेता था, पर रिक्शा उसकी खटाल में रात नौ बजे तक अवश्य पहुंच जाना चाहिए, नहीं तो ख़ैर नहीं. खटाल पहुंच कर उसे मालुम पड़ा कि उसके शहर के एक इलाके में भी सांप्रदायिक दंगा भड़क उठा है और पुराने शहर की ओर कर्फ़्यू भी लगा दिया गया है. माहौल चारों ओर गर्म और तनावपूर्ण था.

वह उल्टे पांव वापस अपने टेंट की ओर चल पड़ा, इसलिए नहीं कि उसे मौत से डर लगता था, बल्कि इसलिए कि उसे ज़िंदगी और ज़्यादा डरावनी और ख़तरनाक प्रतीत हो रही थी. उसे चिंता हो रही थी कि अगर कल सारे शहर में कर्फ़्यू लग गया तो बनारसी का क्या होगा, कल खोमचालाल का परिवार क्या खायेगा. वह ख़ुद क्या खायेगा. उसे कुछ नहीं सूझ रहा था.

टेंट के पास पहुंचकर उसे पता चला कि अभी थोड़ी देर पहले किसी प्राइवेट बिल्डर के आदमी आये थे, उन्होंने झोपड़पट्टी में रहने वालों को पंद्रह दिन में जगह खाली करने की धमकी दी थी. उनका कहना था कि यह ज़मीन उनके मालिक ने ख़रीद ली है और वह यहां पर एक आलीशान होटल बनाने वाले हैं.

मेहनती का दिल बैठ गया. वह टेंट के अंदर आया और लेट गया. उसे लगा कि उसके दोनों कान बज रहे हैं. उसकी आंखें भी बहुत कुछ देख रही थीं, पर वह सो नहीं रहा था. उसकी आंखें नम थीं. जाने कब उसको नींद आ गयी. सपने में उसे एक तरफ़ शहीद मैदान से आती 'भारतमाता की जय' और 'मेरा भारत महान' सुनाई पड़ रहा था, और दूसरी तरफ़ ग़रीबी और बम धमाकों से क्षत-विक्षत लाशें दिखायी पड़ रही थीं.

सपना टूटते ही मेहनती फिर उठ बैठा. उसे याद आ रहा था कि कैसे गांव में बाढ़ आ जाने से उसकी फ़सल बर्बाद हो गयी थी और उसका परिवार जिसमें केवल उसके मां और बाप थे, क़र्ज में डूब गये और फिर भागकर शहर आ गये. जहां उसकी मां, जिसने कभी शराब, बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू, इत्यादि को हाथ भी नहीं लगाया था, कैंसर से पीड़ित होकर मर गयी. उसके एक वर्ष बाद पिताजी जो उसकी तरह रिक्शा चलाते थे सड़क दुर्घटना में मारे गये. उसके बाद उसने भी रिक्शा चलाकर अपना पेट भरना शुरू किया और आज तक उसका पेट नहीं भर पाया. उसकी कोशिश ज़ारी है, जंग ज़ारी है.

जिंदगी और मौत के बीच की जंग. उसे पता है कि हारना तो ज़िंदगी को ही है. मौत की विजय निश्चित है. मगर फिर भी, मेहनती पूरी मेहनत से मौत को पीछे धकेलने की कोशिश में लगा है.

मेहनती आधी रात को जाने फिर क्यों टेंट के बाहर निकलता है. इधर-उधर नज़र दौड़ाता है. दूर उसे एक बड़े बंगले पर बिजली कि झालरें टंगी नज़र आती हैं. झालरों द्वारा कुछ लिखा भी गया था. उसे लगा ज़रूर 'मेरा भारत महान' लिखा होगा. उसे फिर याद आया कि आज 'पंद्रह अगस्त' है. 'आज़ादी' का दिन है, हम आज़ाद हैं और तरक्की पर हैं. ख़ुशहाल हैं. वह वापस टेंट के अंदर आया, सोने की कोशिश करने लगा पर उसकी आंखों से अश्रुधारा बहती रही. फिर जाने कब उसे नींद आ गयी, और 'रात गयी तो बात गयी.'

द्वारा, रणवीर इलेक्ट्रिकल्स
बीएसएनएल टेलीफ़ोन एक्सचेंज के सामने
अखनूर (जम्मू) - १८१२०१
ई-मेल: shivppal@gmail.com
मो. : ९१ ९४६९६८२५०४

ग़ज़लें

✍ सलीम अख़्तर

ख़ुद को पिघला के भूख मारी है ।
ज़िंदा रहने का दाम भारी है ।।

बीज पर तजरुबों से क्या हासिल ।
पेड़ के भाग्य में तो आरी है ।।

फेंक आया मैं जिस्म का पर्दा ।
आईनों अब तुम्हारी बारी है ।।

हम तो सबसे ही हंस के मिलते हैं ।
तुम समझते हो कारोबारी हैं ।।

मैंने बच्चों को वर्तमान दिया ।
आगे अब उनकी जिम्मेदारी है ।।

वहीद मंज़िल, अंसारी वार्ड,
गोंदिया - ४४१६०१,
मो.-९९२३४१३१०२

✍ कृष्ण सुकुमार

चमक तो दर्द में ढलने के बाद आयी है ।
दिये में रोशनी जलने के बाद आयी है ।।

चला तो चलता गया रात-दिन मुसल्सल मैं ।
थकन तो ठहर कर चलने के बाद आयी है ।।

नदी तो प्यास के बेहद क़रीब है लेकिन ।
वो मेरे ख़्वाब में ढलने के बाद आयी है ।।

लिहाज लौट तो आयी है उसकी आंखों में ।
भड़ास दिल की निकलने के बाद आयी है ।।

ये मेरे लब पे जो आयी है मुस्कुराहट सी ।
ग़मों की बर्फ़ पिघलने के बाद आयी है ।।

१५३-ए/८, सोलानी कुंज, भा.प्रौ.सं.
रुड़की - २४७६६७ (उत्तराखंड)
मो.-९८९७३३६३६९.

लघुकथा

सरदारनी

✍ लक्ष्मी रूपल

सरदार गुरदीप सिंह के घर से तीन-चार घर छोड़ कर उसी मुहल्ले में उनके एक सहकर्मी अनवर ख़ान भी रहते थे. दोनों में अच्छी मित्रता थी. अनवर ख़ान अक्सर शाम के समय घर आ जाया करते थे और दोनों मित्र एक साथ चाय पीते थे. सरदार जी की पत्नी गुरबचन कौर अधिक पढ़ी-लिखी तो थी नहीं. अक्सर यही कहा करती थी कि मुसलमान अच्छे नहीं होते, देश बांट दिया और हिंदुओं को क़ाफिर कहते हैं. अनवर खान का घर आना उसे अच्छा तो नहीं लगता था परंतु वह कुछ बोलती नहीं थी. उसके चले जाने के बाद जूठे कप और गिलासों को वह सूखी राख से कई बार मांजती और उसके बाद भी शुद्ध करने की दृष्टि से बर्तनों में जलते हुए कोयले डालती थी. तब जाकर उसे संतोष होता था. सरदार साहब हंसी-हंसी में कह भी देते थे - 'अच्छी तरह देख ले! किसी बर्तन में मुसलमान लगा तो नहीं रह गया?' अपनी बेटी को भी वह उनके घर जाने से मना करती रहती थी.

सरदार जी टूर पर बाहर गये हुए थे. बेटी सड़क के उस पार की दुकान से ब्रेड लेकर आ रही थी. तेज़ी से आते हुए एक ट्रक ने टक्कर मार दी और लड़की वहीं गिकर बेहोश हो गयी. संयोग से अनवर ख़ान खाना खाने के लिए घर आ रहे थे. लड़की को तुरंत अस्पताल ले गये, एक बोतल ख़ून की व्यवस्था की. जब सारी व्यवस्था हो गयी तो उन्होंने बचन कौर को फ़ोन किया. वह बहुत घरबाई हुई थी, परेशान हो गयी और हांफते हुए अस्पताल पहुंची. अनवर ख़ान लड़की की खाट के पास बैठे थे और ख़ून उनके बेटे ने दिया था.

बी ३-२०१ निर्मल छाया टॉवर्स,वी.आई.पी.रोड,
ज़िरकापुर, मोहाली - १४० ६०३, मो.-९८७६२६९३६९

कहानी

धूप-छांव

✍ डॉ. पुष्पा सक्सेना

''मम्मी, आज लंच के लिए मेरा एक फ्रेंड आ रहा है. पिछले दो महीने से काम के सिलसिले में बाहर गया हुआ था.'' मोबाइल सुन कमल ने मां से कहा.

''अरे पहले से क्यों नहीं बताया? इतनी जल्दी क्या तैयारी करूं?'' विभा परेशान हो गयी.

''तैयारी क्या करनी है, वो कोई वी आई पी थोड़े है. सबसे आसान है अपना यलो पुलाव यानी तहरी बना लो. आलू-मटर और गोभी तो होगी ही!'' कमल ने समाधान दे दिया.

''तहरी भी भला मेहमान को खिलाई जाती है. तुझे पसंद है इसका मतलब यह नहीं, तेरा दोस्त भी चावल की तहरी पसंद करे.'' विभा ने नाराज़गी दिखायी.

''तुम बेकार में परेशान हो रही हो, मम्मी जयकुमार आधा हिंदुस्तानी है. उसके पापा भारतीय थे इसलिए जैकी अच्छी हिंदी बोल और समझ लेता है. उसे मैं अच्छी तरह से जानता हूं. इंडियन रेस्तरां में मेरे साथ खाते हुए मेरी पसंद उसकी पसंद बन गयी है. एक बात और अपनी आदत के अनुसार उससे उसके मां-बाप के बारे में पूछना मत शुरू कर देना. ज़्यादा बात करने की तुम्हारी आदत है, इसीलिए कह रहा हूं.

''क्यों, किसी के मां-बाप के बारे में जानना ग़लत बात है?'' विभा की आवाज़ में तल्ख़ी थी.

''जिसके मां-बाप ही न हों उससे उनके बारे में. पूछना क्या ठीक बात होगी. अनाथ न होते हुए भी उसने अनाथ का जीवन जिया है. उसके पेरेंट्स काफ़ी पहले ही अलग हो गये. उन दोनों ने तो अपनी अलग दुनिया बसा ली, पर जैकी अकेला छोड़ दिया गया.

''ओह, बेचारा लड़का, पर यह बता बिना मां-बाप के वह कंप्यूटर इंजीनियरिंग कैसे कर रहा है? यहां तो पढ़ाई बहुत महंगी है.'' विभा विस्मित थी.

''अमरीका के लिए ये कोई अचरज़ की बात नहीं है. यहां स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई के लिए अधिकतर स्टूडेंट ख़ुद काम करके फ़ीस जुटाते हैं. जैकी ज़हीन था, पढ़ने की इच्छा के कारण दूसरों की कारें धोकर, घरों में अख़बार देकर, ट्यूशन पढ़ा कर वह यहां तक पहुंचा है. एम्. एस. में टॉप किया है. अब स्कॉलरशिप पाकर पीएच. डी. कर रहा है. हेड का फेवरिट है.''

''तू तो अभी एम्.एस. कर रहा है फिर वह तेरा दोस्त कैसे हुआ?''

''मुझे टीचिंग असिस्टेंटशिप मिली है. जैकी मेरा सीनियर है, कभी कोई कठिनाई होने पर उसकी मदद लेता था. बस हम दोनों एक-दूसरे के पास आते हुए दोस्त बन गये. उसने अपना दुखद अतीत मेरे साथ बांटा है, मम्मी.''

''यहां की बातें सुनती हूं तो आश्चर्य होता है. मुझे तो यहां की ज़िंदगी रास नहीं आती, ऐसी बातें जान-सुनकर लगता है यह ठीक ही कहा जाता है कि भारत महान है.''

''अभी तुम यहां दो ही महीनों से आयी हो, ज़्यादा दिन रहोगी तो अमरीका ही अच्छा लगने लगेगा. अब बातें ही करती रहीं तो तुम्हारी तहरी की जगह हमें लंच के लिए किसी रेस्तरां में जाना होगा.'' कमल ने परिहास किया.

किचेन में पहुंच विभा ने फ्रिज़ से गोभी-मटर निकाली तो चेहरे पर मुस्कान आ गयी. सच ही तो कहता है कमल, छिली मटर, कटी सब्ज़ी से खाना बनाना कितना सरल हो जाता है. वैसे अपने देश में धूप में बैठ कर मटर छीलते-खाते जाने का भी तो अलग ही मज़ा होता है. थोड़ी ही देर में किचेन से मसालों की सुगंध आने लगी. तहरी छौंक विभा ने रायता और सलाद भी आसानी से बना लिया. पापड़ तो पहले ही तल कर रख रखे थे.

डोर-बेल पर दरवाज़ा कमल ने ही खोला था. जींस पर पहिनी जैकेट से झांकती सफ़ेद टी-शर्ट पहिने जयकुमार के चेहरे पर मीठी मुस्कान थी.

''हाय जैकी, आओ. मम्मी, जैकी आ गया.'' कमल ने विभा को आवाज़ दी.

विभा के पहुंचते ही कमल ने विभा का परिचय दिया.

एम. ए. (भूगोल – इलाहाबाद वि. वि.), एम. ए (हिंदी – रांची वि. वि.),
पी–एच.डी. (हिंदी – रांची वि. वि.).

लेखन : *राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में १०० से अधिक कहानियां, लेख व यात्रा-संस्मरण आदि प्रकाशित.*

प्रकाशन : *कहानी संग्रहों, उपन्यासों, बाल साहित्य व एकांकी की २४ पुस्तकें प्रकाशित. मास्को वि. वि. के हिंदी विभाग के कोर्स में एक पाठ्य-पुस्तक. वाशिंगटन वि. वि. में पाठ्य-क्रम में कई कहानियां.*

प्रसारण : *स्थानीय व राष्ट्रीय टी.वी. के लिए अनेक शैक्षिक स्क्रिप्टों का लेखन व विकास. यथा : प्रयास, वजूद, छूना है आकाश, पुकार आदि. किरण बेदी, भीमसेन जोशी, राजेंद्र यादव, तिजन बाई आदि का टी.वी. के लिए साक्षात्कार. दिल्ली व रांची आकाशवाणी के केंद्रों से कई कहानियां व एकांकी प्रसारित. राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संस्था द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों का लेखन व निर्देशन, जिन्हें तीन वर्ष तक १२ भाषाओं में प्रसारित किया गया.*

अनुभव : *कार्यक्रम निदेशक (सेल कम्यूनिकेशन नेटवर्क)- ९ वर्ष. वरिष्ठ हिंदी अधिकारी (सेल)- १२ वर्ष. प्रधानाचार्या (बोकारो गर्ल्स कॉलेज)- ५ वर्ष. प्रधानाचार्या (लाला लजपतराय स्कूल, रांची) - ३ वर्ष. हिंदी और भूगोल अधिवक्ता (रुरकेला, बोकारो व दिल्ली)- २० वर्ष.*

पुरस्कार/ सम्मान : *बी. ए. में तीन स्वर्ण-पदक व प्रथम स्थान (इलाहाबाद वि. वि.), उ. प्र. सरकार द्वारा उत्कृष्टता के लिए छात्रवृत्ति, तीन विशिष्ट सेवा पुरस्कार (सेल, रांची), 'अलविदा' पुस्तक के लिए भारतीय*

''जैकी, मेरी मम्मी से मिलो और मम्मी, यही है मेरा प्यारा दोस्त जयकुमार, हम सब इसे जैकी ही पुकारते हैं.''

''नमस्ते मां, क्या मैं आपको मां कह सकता हूं?'' हाथ जोड़ जैकी ने पूछा.

''क्यों नहीं, मेरे लिए जैसा कमल वैसा ही तू है. देखा कमल, जैकी ने मुझे नमस्ते की, मां कहा और तू हिंदुस्तानी हो कर भी हाय-हाय कहता है.' विभा को अमरीकियों का हेलो की जगह हाय कहना कभी नहीं भाया.

''अरे मम्मी, यह बातें बना रहा है. कल ही इसने मुझसे पूछा था, मां को विश कैसे करूंगा जिससे वह मुझसे इम्प्रेस हो सके.'' कमल ने जैकी की सच्चाई बतायी.

''जो भी हो, उसने कम से कम तेरी संस्कृति के बारे में तो जानना चाहा, यही क्या कम है.''

''ठीक है मां, अब लंच मिलेगा या जैकी की तारीफ़ से ही पेट भरना होगा. जैकी कौन सी ड्रिक लेगा?'' कमल ने बात का रुख़ बदला.

''तू तो जानता है, मेरे लिए तो सादा पानी ही सबसे अच्छी ड्रिंक है, कमल.''

कमल ने फ्रिज़ से जूस निकाल कर दो ग्लासों में ढाल कर एक जैकी की ओर बढ़ाया.

''ये फ्रूट-जूस सेहत के लिए अच्छा है. टेबल पर तेरे लिए पानी भी रखा है.''

विभा को प्लेटें लाते देख जैकी सहायता के लिए खड़ा हो गया.

''मां, ये सब हम दोनों कर लेंगे. कमल तू मां की हेल्प नहीं करता?''

''अरे मेरी मां बड़ी एफीशिएन्स है. मुझे काम करने ही नहीं देती.'' कमल ने बात बनायी.

''अरे सच्चाई क्यों नहीं बता देता, तू कितना बड़ा आलसी है. घर में, सब पर हुकुम ही तो चलाता था. कभी पानी का एक ग्लास भी अपने आप नहीं लिया.'' विभा ने शिकायत की.

''ठीक है मां, पर अब तो यहां आकर सब काम ख़ुद ही तो करता हूं. यह बात दूसरी है जब से तुम आयी हो, मुझे काम नहीं करने देतीं. इसमें ग़लती तुम्हारी ही है.''

''अच्छा-अच्छा, अब बातें बनाना छोड़, जैकी को खाना परोस.''

जैकी मां-बेटे की नोक-झोंक सुन कर मुस्करा रहा था. प्लेट में परोसी तहरी ने उसे कोई भूली बात याद दिला दी. अनायास ही कह बैठा — ''पापा को ऐसी तहरी बहुत पसंद थी. कहते थे उनके लखनऊ वाले घर में छुट्टी वाले दिन तहरी बनती थी. जिस दिन मम्मी घर में नही होती थीं पापा तहरी बनाते थे, साथ में आपने दही-पापड़ वगैरह जो बनाया है, पापा भी ऐसी ही कोशिश करते थे. जैकी भूली यादों में खो सा गया. चेहरे पर उदास छाया तैर गयी.

''बस कर यार, तेरे चेहरे पर उदासी अच्छी नहीं लगती. अरे तू बिंदास लड़का है, तेरे चेहरे पर हंसी ही खिलती है.'' कमल ने प्यार से कहा.

''क्या तुम्हारी मम्मी पापा की पसंद का खाना नहीं बनाती थीं? हमारे यहां तो घर के पुरुष की पसंद को ही महत्व दिया जाता है. ये कमल भी रोज नयी फ़रमाइश करता था और मुझे इसकी फ़रमाइश पूरी करनी पड़ती थी.'' विभा के चेहरे पर मीठी मुस्कान आ गयी.

''असल में मेरी मम्मी पक्की अमरीकन थीं और पापा ठेठ हिंदुस्तानी. दोनों ने अपनी बेमेल मैरिज़ पता नहीं कैसे ग्यारह साल तक खींची. मम्मी शादी के बाद पापा के साथ लखनऊ गयी थीं, पर वहां आधुनिक सुविधाओं के सर्वथा अभाव ने मम्मी के मन में इंडिया के लिए ऐसी नफ़रत भर दी कि पापा तक के लखनऊ जाने पर सख़्त पाबंदी लगा दी. पापा मन मार कर रह जाते. अमरीका की सुख-सुविधाओं के होने पर भी पापा अपना लखनऊ कभी नहीं भुला सके.''

''वैसे यह बात तो सच है. भारत के सब घरों में यहां जैसी सुविधाएं नहीं हैं. यहां रहने वालों को इन सुविधाओं के बिना ऐडजस्ट कर पाना कठिन लगना स्वाभाविक ही है.'' विभा ने कहा.

''अगर ऐसा है तो पापा लखनऊ को भुला क्यों नहीं सके?''

''सच तो यह है, कहीं भी रहो, अपने देश की माटी से लगाव नहीं टूट सकता.''

''बिलकुल यही बात हीरजी आंटी भी कहती थीं, वह भी अपने देश की याद करती रहती थीं.''

''हीरजी आंटी कौन हैं, जैकी?'' विभा उत्सुक हो उठी.

''आंटी अपने पति के साथ अमरीका आयी थीं, उनके पति ने फ़ौज में नौकरी की थी. वियतनाम के साथ लड़ाई में वह शहीद हो गये. हीरजी आंटी अकेली पड़ गयीं. उनसे शादी करने को बहुत लोगों ने प्रस्ताव दिये, पर आंटी ने प्रस्ताव स्वीकार नहीं किए. मुझे अकेला जान कर उन्होंने अपने घर के दरवाज़े खोल दिये. काम करके आंटी की सहायता करनी चाही, पर उन्होंने पैसे स्वीकार नहीं किये. हमेशा कहतीं ये पैसे आगे पढ़ाई के लिए काम आयेंगे. आज उन्हीं की वजह से यहां तक पहुंच सका हूं. जैकी की आवाज़ भीग-सी गयी.''

''तेरी आंटी तो सचमुच महान हैं. मैं उनसे मिलना चाहती हूं.'' विभा ने आदर से कहा.

''काश आप उनसे मिल पातीं. मुझे यह जीवन दे कर वह इस संसार से विदा हो गयीं. आज वह नहीं हैं, पर मेरी यादों में वह हमेशा जीवित रहेंगी, अच्छा आज चलता हूं.'' अचानक जैकी उठ खडा हुआ. चेहरे पर उदासी स्पष्ट थी.

जैकी के चले जाने के बाद बहुत देर तक विभा उसके अकेलेपन पर तरस खाती रही.

''कैसा दुर्भाग्य है, मां-बाप के रहते भी लड़का अकेला छोड़ दिया गया. भला हो उन आंटी का जिसने परायी हो कर भी लड़के को घर की छत और सहारा दिया.''

''तुम बेकार परेशान हो रही हो, मम्मी. यहां ब्रोकेन फैमिली आम बात है. जी उचाट हो जाने पर आपसी सहमति से मां-बाप एक दूसरे से अलग होकर अपनी नयी दुनिया बसा लेते हैं. यहां के बच्चे इस बात को स्वाभाविक और सहज रूप में लेते हैं.'' कमल ने समझाया.

विभा से मिलने के बाद जैकी अक्सर कमल के साथ उसके घर आ जाता. विभा के साथ बातें करना उसे अच्छा लगता. अब जैसे वह दूसरा ही जैकी होता जा रहा था. उसके खुले स्वभाव से कमल भी विस्मित होता. अब उदासी की जगह उसमें जीवंतता आती जा रही थी. विभा के स्नेह ने उसे जैसे एक शरारती युवक बना दिया था. उसके मज़ाक विभा को भी हंसा जाते. शायद अब वह विभा के साथ अपना बचपन जी रहा था. जैकी के आने से विभा का खालीपन काफ़ी सीमा तक दूर हो जाता था. फिर भी विभा संतुष्ट नहीं हो पाती. उसे भारत के रिश्तेदार और सखी सहेलियां याद आतीं. कमल से कहती — ''पता नहीं यह कैसा देश है? मुझे तो यहां अपना अकेलापन खलता

है. अगर तेरे पापा हमें छोड़ कर इस दुनिया से न चले गये होते तो मैं भला यहां हमेशा के लिये आती?'' मां आंसू पोंछती.

''परेशान न हो मां, जल्दी ही तुम्हारा परिचय यहां की इंडियन कम्यूनिटी से हो जायेगा तब तुम बोर नहीं होगी. तुम्हारा संगीत-ज्ञान तुम्हें बहुत पॉपुलर बना देगा. चाहो तो म्यूजिक क्लास शुरू कर दो, यहां बहुत स्टूडेंट्स मिल जायेंगे.''

कमल की बात में सच्चाई थी. भारतीय परिवार वाले अपने बच्चों को भारतीय संगीत की शिक्षा दिलाना चाहते थे. कम से कम इस तरह वे अपनी संस्कृति से कुछ सीमा तक जुड़ सकेंगे. विभा को कमल का प्रस्ताव अच्छा तो लगा, पर अभी वह इतनी जल्दी कोई निर्णय नहीं लेना चाहती थी. उसने संगीत की डिग्री प्रयाग संगीत समिति से ली थी. भारत में वह संगीत की अध्यापिका थी. विभा के मन में कुछ उत्साह हो आया. शायद इस तरह उसका अकेलापन भी दूर होगा. कुछ लोगों से मिल कर फैसला करना ठीक होगा.

एक सप्ताह बाद कमल ने अपने क्लास से वापस आकर ख़ुशी से विभा से कहा — ''मां लगता है भगवान तुम पर मेहरबान हैं. तुम्हारा अकेलापन दूर करने के लिए तुम्हारी बातूनी भतीजी, आभा को यहां की यूनीवर्सिटी में एडमीशन मिला है. आज मामाजी ने फ़ोन पर बताया. अब तो अपनी बक-बक से सारे घर की शांति भंग कर देगी.'' कमल के शब्दों में स्नेह था.

''अरे वाह, ये तो बड़ी अच्छी ख़बर है. जब से तू अमरीका आया, आभा ने ज़िद पकड़ ली थी, वह भी अमरीका जायेगी. पढ़ाई में तो आगे थी ही, आख़िर भैया को उसकी ज़िद माननी ही पड़ी. आभा बातें तो करती है, पर उसकी मीठी बोली कितनी प्यारी है, सुनते ही दुःख दूर भाग जायें.''

''ठीक है तुम ही उसकी मीठी बातें सुनना, मुझे डर है वो अपनी बकबक से मुझे परेशान न करे. वह हमारे साथ ही रहेगी इसी शर्त पर मामा उसे यहां भेज रहे हैं.''

''तुम दोनों के बीच जितना प्यार है, जैसे मैं जानती नहीं.'' विभा के चेहरे पर हल्की मुस्कान थी.

आभा को एक हफ़्ते बाद आना था. विभा की ख़ुशी का ठिकाना नही था. आभा की मां की मृत्यु के बाद विभा ने ही उसे सम्हाला था. विभा ने आभा की मनपसंद ढेर सारी खाने की चीज़ें बना डालीं. एक-एक दिन गिन कर आख़िर वो दिन आ ही गया जिसकी सबको प्रतीक्षा थी. आभा को रिसीव करने जैकी भी आ गया था.

एयरपोर्ट पर फ्लाइट पहुंचने की सूचना आ चुकी थी. क़रीब आधे घंटे बाद कंधे पर बैग लटकाये आती आभा दिखी थी. चेहरे पर मुस्कान खिली थी. कमल के पास आयी आभा को कमल ने गले लगा लिया. दोनों के चेहरों पर ख़ुशी जगमगा रही थी.

''ओह तो यही हैं आभा दी ग्रेट, जिनके लिए मां ने हज़ारों पकवान बना रखे हैं. वैसे इनके चेहरे पर तो कोई ख़ास आभा दिखाई नहीं देती. टिपिकल हिंदुस्तानी सामान्य लड़की की इतनी तारीफें, मैं तो कोई हूर की परी एक्स्पेक्ट कर रहा था.'' जैकी ने चिढ़ाने के अंदाज़ में कहा.

''हेलो, आपकी तारीफ़? मेरे बारे में कुछ भी कहने का आपको किसने हक दिया? आभा का सुंदर गोरा चेहरा लाल हो उठा था.

''मेरी तारीफ़ सुन पाने के लिए आपको काफ़ी लंबा समय लगेगा. फिलहाल इतना जान लीजिए आपकी मदद के लिए यह बंदा हमेशा हाज़िर रहेगा.'' हंसते हुए जैकी ने कहा.

''थैंक्स, पर मुझे किसी की भी और कम से कम आपकी मदद तो कभी मंजूर नहीं होगी, मैं अपनी मदद ख़ुद कर सकती हूं, समझे मिस्टर आप जो भी हों ....''

''अब बस भी कर यार, बहुत मज़ाक हो गया. मेरी बहिन का मूड मत ख़राब कर. आभा, यह मेरा पक्का यार जैकी है. इसकी आदत ही मज़ाक करने की है. चल घर चलें. मां इंतज़ार कर रही होंगी. जैकी, तू अपनी कार में सामान ले कर पहुंच.''

घर पहुंची आभा को सीने से चिपटाती विभा के आंसू बह निकले. उस समय भी जैकी मज़ाक करने से नहीं चूका — ''कमाल है, आभा के आने का इतना दुःख मना रही हैं, मां. कोई बात नहीं, आपने जो पकवान बना रखे हैं, वो तो मुझे खाने दीजिए. आभा जी तो फ्लाइट में ख़ूब खाती हुई आयी हैं. पर मेरा भूख से दम निकला जा रहा है.''

''पागल कहीं का, अरे ये तो ख़ुशी के आंसू हैं, इतने दिनों बाद किसी अपने को देख रही हूं.'' आंचल से आंसू पोंछती विभा ने कहा.

''इसका मतलब मैं आपका अपना नहीं हूं. जब से

आप मिली हैं मुझे महसूस होता है, मेरा भी एक घर है जहां मेरा इंतज़ार किया जाता है,पर मैं शायद ग़लत था. जैकी उदास सा दिखा.''

''अब मां को इमोशनली ब्लैकमेल मत कर, यार. यह आभा ही तुझे ठीक करेगी. इसे सीधी समझने की ग़लती मत करना. मेरे भी कान काट सकती है.'' कमल हंस रहा था.

''सच, तब तो इनसे दूर रहना चाहिए, वैसे देखने से तो ये इतनी डरावनी नहीं लगतीं.''

''चल आभा, तू फ्रेश हो जा, इतनी दूर के सफ़र से आयी है, थक गयी होगी. मैं खाना लगाती हूं. इस जैकी की बातों पर ध्यान मत दे, मैंने ही प्यार दे कर इसकी आदत बिगाड़ दी है.''

''इनकी ऐसी बात ही कौन सी है, बुआ जिस पर ध्यान दिया जाये.'' अपनी बात ख़त्म करती आभा तेज़ी से बाथरूम में फ्रेश होने चली गयी.

''एक बात तो ज़रूर है, आभा की बदौलत मुझे भी इतना बढ़िया खाना मिल रहा है. इस बात के लिए तो आपको शुक्रिया कहना ही पड़ेगा, आभा जी.'' खाने की मेज पर तरह-तरह के व्यंजन देख कर जैकी ख़ुश हो गया.

''अच्छा आप शुक्रिया भी देते हैं? मुझे तो लगा आप बस व्यंग्य करना ही जानते हैं.''

''आप मेरे बारे में जब जानेंगी तब पता लगेगा मेरी क्वालिटीज़ की इतनी लंबी लिस्ट है. क्यों कमल ठीक कह रहा हूं न?''

''भला तू कभी ग़लत हो सकता है. हां, कल आभा को इसके डिपार्टमेंट तुझे पहुंचाना होगा, मेरी हेड के साथ मीटिंग है. इसे सब समझा देना. ऑफ़िस में पेपर्स जमा करने होंगे.''

''कमल भैया, मैं अकेली जा सकती हूं, मुझे किसी का एहसान नहीं लेना है.''

''अरे यूनीवर्सिटी इतनी बड़ी है, तू खो जायेगी, यह इंडिया नहीं है. वैसे भी इस जैकी पर मेरे बहुत एहसान हैं, इसी बहाने एक एहसान तो उतार सकेगा.'' कमल ने परिहास किया.

दूसरी सुबह आभा जाने को तैयार थी. मन में उत्सुकता थी कैसा होगा उसका डिपार्टमेंट. इंडिया में उसने ज्योग्राफी विषय में टॉप किया था. अब उसी विषय में वह पीएच.डी. करने आयी है. पापा ने कितनी मुश्किल से उसे अमरीका आने की इज़ाजत दी है.

ठीक समय पर जैकी हाज़िर था. बड़ी इज़्ज़त से कार

दो ग़ज़ले

✍ **उदय शंकर सिंह 'उदय'**

१.

दे रही माँ झिड़कियों पर झिड़कियां
बे वजह क्यों हंस रहीं हैं लड़कियां !
मुझे कुछ अब लग रहा है इस तरह
खुल गईं हैं बंद घर की खिड़कियां।
झलमला कर ओस फूलों पर गिरी,
और उन पर उड़ रही हैं तितलियां।
गिर गएं दाने बिखरकर अन्न के,
खुल गई है चावलों की बोरियां ।
दृश्य सारे रंगमंचों के खुले
खिंच गई हैं यवनिका की डोरियां ।

२.

अपने गम को आधा कर लो ।
मेरा दुख यह साझा कर लो ।।
दूर तलक जाए पतंग यह,
धागे में तुम मांझा कर लो ।
आओ बैठो वट-छैया में,
मन को थोड़ा ताजा कर लो ।
'हीर' मिलेगी तुमको ऐसे
खुद को तुम जब रांझा कर लो ।
धूमधाम से निकले मेरा,
कभी जनाजा बाजा कर लो ।

गीतांबरा, सहबाजपुर (दुर्गास्थान),
उमानगर, मुजफ्फर (बिहार),
पिन - ८४२००४
मो.- ९५७२१०३९१८

का अगला डोर खोल जैकी ने आभा को बैठने को कहा था. 'थैंक्स' कहती आभा बैठ गयी.

हरी घास और पेड़ों से घिरी डिपार्टमेंट की भव्य इमारत ने आभा को मुग्ध कर लिया. सामने नीला सागर दूर से दिख रहा था. भूगोल विषय के अनुरूप स्थान का चुनाव सराहनीय था.

''वाह, सामने लहराता सागर, पर खाली टाइम में सागर की सैर मत करने चली जाना. याद रखना यहां पढ़ने आयी हो. अमरीका में इंडिया जैसी आसान पढ़ाई नहीं होगी.'' जैकी ने चिढ़ाया.

''थैंक्स फॉर योर एडवाइस. मैंने बिना पढ़े टॉप नहीं किया है, जनाब. अब आप जा सकते हैं, घर मैं ख़ुद वापस पहुंच जाऊंगी. मेरे पास रोड-मैप है.''

''आर यू श्योर, खो जाओ तो काल कर लेना, यह अमरीका है, यहां अच्छे-अच्छे भटक जाते हैं.''

''भूलिए मत, मेरा विषय भूगोल है. अमरीका की रोड तक पढ़ रखी हैं. बाय.''

डिपार्टमेंट के ऑफ़िस में सारी फौर्मलिटीज़ पूरी कर के आभा अपने गाइड से मिली थी. गाइड एक प्रौढ़ अमरीकी डॉक्टर जोनाथन थे. आभा के विषय पर चर्चा करते समय उन्होंने कई उपयोगी सुझाव दिये और पहले ही दिन आभा को लाइब्रेरी देखने की सलाह दी.

''यहां लाइब्रेरी में तुम्हें अपने विषय से संबंधित बहुत मैटीरिअल मिल जायेगा. कंप्यूटर की सुविधा सब विद्यार्थियों को है. सबसे पहले विषय पर डेज़रटेशन तैयार करना होगा. उसके अप्रूवल के बाद रिसर्च-वर्क शुरू कर सकोगी. उम्मीद है तुम मेहनत से सफलता पा सकोगी.''

''आपको निराश नहीं करूंगी,सर.''

''सर नहीं मुझे सब जॉन कहते हैं, तुम भी इसी नाम से पुकारोगी.'' मुस्करा कर जोनाथन बोले.

अपने गाइड से बातें कर के आभा संतुष्ट थी, उसका अमरीका आने का निर्णय ग़लत नहीं था. अब जल्दी ही वह अपना काम शुरू करेगी.घर वापसी के समय जैकी की चुनौती का चैलेन्ज था. यूनीवर्सिटी के बस-स्टैंड पर लगे बोर्ड से आभा ने अपनी बस चुन ली. वह जनाब जैकी को दिखा देगी, वह कितनी सक्षम है. थोड़ी कठिनाई के बाद घर पहुंची आभा बेहद प्रसन्न थी. अब जैकी को पता लगेगा आभा क्या चीज़ है. आभा के मोबाइल पर जैकी था —

''कहिए , मिस आभा, कहां हैं आप? डरने या परेशान होने की ज़रूरत नहीं है, बताइए, किस जगह पर हैं, लेने पहुंच जाऊंगा.''

''थैंक्स फॉर योर कंसर्न, मिस्टर जयकुमार. बिना किसी परेशानी के घर आ गयी हूं और इस वक़्त मज़ेदार पकौड़ों के साथ चाय पी रही हूं.''

दस मिनट में जैकी हाज़िर था.

''ये तो बड़ी बेइंसाफ़ी है, मां, बेटी के आते ही इस बेटे को भुला दिया. यहां मैं इनके रास्ता भटकने के डर से दिन भर लंच के बिना रहा और ये यहां पकौड़े उड़ा रही हैं.''

''ऐसे क्यों कह रहा है? जैकी, आभा के आने के, पहले तू ही तो मुझे हंसाता रहा है. आ तू भी पकौड़े खा कर बता कैसे बने हैं.'' विभा ने स्नेह से कहा.

''अब बताइए मैं स्मार्ट हूं या नहीं?'' शोखी से आभा ने कहा.

''मान गया, हज़ार बार मान गया. आप सुपर गर्ल हैं. अब मुझे पकौड़ों का मज़ा लेने दो, तुम तो देर से खा रही हो, कुछ मेरे लिए भी तो छोड़ दो.'' जैकी ने पूरी प्लेट अपने सामने खींच ली.

''ठीक है, मैं भुक्कड़ नहीं हूं. जो दिन भर भूखा रहा हो, उसे सारे पकौड़े खाने देना पुण्य होगा.''

''थैंक्स, ये हुई ना इंसाफ़ की बात.'' आभा की तीखी बात से बेपरवाह जैकी खाता रहा.

दिन बीतते जा रहे थे. आभा कड़ी मेहनत कर रही थी, अचानक इंडिया से कमल के एकमात्र चाचा की सीरियस बीमारी की ख़बर मिलते ही कमल को इंडिया जाना पड़ा था. जैकी ने आश्वस्त किया था कमल की अनुपस्थिति में वह मां और आभा का ख़्याल रखेगा. जैकी रोज़ आकर उनकी ख़ोज-ख़बर ही नहीं लेता था बल्कि उनका मन भी बहलाता था. आभा को परेशान करने में उसे मज़ा आता. यहां तक कि लाइब्रेरी में काम कर रही आभा को बीच-बीच में आकर उसके काम में बाधा डालना मानो उसका अधिकार होता. लाइब्रेरी के शांत वातावरण में भी उसे चिढ़ाने से बाज़ नहीं आता.

''इतनी मेहनत किस लिए कर रही हो, आख़िर तो शादी के बाद यह पढ़ाई काम आने से रही. इससे अच्छा अपनी बुआ से बढ़िया खाना पकाना सीख लो. पति का प्यार पेट के रास्ते से ही जीता जा सकता है.'' जैकी

शरारत से हंसता.

''छि:, अमरीका में रह कर भी तुम्हारी सोच इतनी छोटी है. तुम्हारी अमरीकी पत्नी तो बुआ जैसा खाना पकाने से रही.'' आभा व्यंग्य करती.

''किसने कहा मेरी पत्नी अमरीकी लड़की होगी. मुझे तो ठेठ हिंदुस्तानी पत्नी चाहिए.'' जैकी की गहरी नज़र आभा को परेशान कर जाती.

''वैसे तुम्हारा यह फैसला तो ठीक ही है. अमरीकी लड़की तुम्हारे दकियानूसी ख़्यालों के साथ तो ऐडजस्ट करने से रही. किसी इंडियन शेफ की बेटी से शादी करना,वो खाने में रोज नयी-नयी डिशें बना कर सर्व करेगी..''

''वैसे तुम्हारा अपने बारे में क्या ख्याल है? मैं भी तो तुम्हारा एक उम्मीदवार हो सकता हूं.''

''जैकी, तुम्हारी शिकायत बुआ और कमल भैया से करनी होगी. क्या समझते हो अपने को? पता नहीं मुझसे क्या दुश्मनी है, काम नहीं करने देते.'' आभा झुंझलाती, इस पर भी जैकी की शिकायत कमल या बुआ तक कभी नहीं पहुंची.

''सॉरी, माफ़ कर दो. मज़ाक कर रहा था. चलो तुम्हारा मूड ठीक करने को आइसक्रीम खाने चलें. पास में एक नया आइसक्रीम-पार्लर खुला है. वहां दूर-दूर से लोग आते हैं.''

''तुम्हें अपना नया पार्लर मुबारक हो, मुझे आइसक्रीम पसंद नहीं, अब जाओ मुझे काम पूरा करना है. जानते हो न, लाइब्रेरी में बातें करना मना है.''

''अगर आइसक्रीम पसंद नहीं तब तो तुम्हारा पति बड़ा ख़ुशनसीब होगा, उसके पैसे जो बचेंगे. यहां की लड़कियां तो आइसक्रीम से ही पेट भरती हैं.'' जैकी चिढ़ाता.

''मेरे पति या उसके पैसों की चिंता तुम्हे क्यों है, मिस्टर जयकुमार ? वैसे भी आपकी जानकारी के लिए मेरा पति कंजूस नहीं, दिलदार होगा.'' आभा नाराज़ होती.

''मुझसे उसका वास्ता जो है. ख़ैर आज नहीं फिर कभी समझोगी.'' आभा को विस्मित छोड़ जैकी चला गया.

कुछ देर तक आभा जैकी की बातों का अर्थ समझने की कोशिश करती रही, उसकी जो समझ में आ रहा था, उससे वह अनजान नहीं थी. आभा को जैकी की बातें अच्छी लगतीं,अपने को बहलाने के लिए वह सोचती, वैसी बातें दो मित्र भी तो करते हैं. वह घर से इतनी दूर पढ़ने आयी है, पापा ने कितने विश्वास से उसे यहां भेजा है, उसके पास प्रेम करने जैसी बकवास चीज़ के लिए समय नहीं है. जैकी से कहना होगा वह उसका समय बर्बाद न किया करे. फिर भी अगर जैकी एक दिन भी घर नहीं आता तो विभा की तरह आभा भी उसे मिस करती. कमल को चाचा की मृत्यु के कारण इंडिया में और रुकना पड़ रहा था. कमल की कमी जैकी की वजह से उतनी नहीं खलती. कभी घर पहुंच कर विभा से स्पेशल खाने की फ़रमाइश करता, कभी आभा को चिढ़ाता.

एक शाम जैकी कुछ थका-सा दिख रहा था. विभा ने कारण जानना चाहा

''क्या बात है जैकी, तू थका-सा लग रहा है, तबियत तो ठीक है?''

''कुछ ख़ास नहीं, बस सर में दर्द है. आपकी चाय की ख़राब आदत जो डाल ली है. कल आ नहीं पाया, चाय नहीं मिली तो सर में दर्द हो गया. कल तो बहुत तेज़ दर्द था.''

''वाह जनाब, अगर जानते हैं कि चाय की आदत ख़राब है तो क्यों पीते हैं? अगर आदत छोड़ दो तो पत्नी को चाय बनाने के काम से छुट्टी मिल जायेगी.'' आभा के आइसक्रीम पसंद न होने की बात पर जैकी ने कहा था पति के पैसे बचेंगे, आभा ने उसी बात का जैसे जवाब दिया था.

''रहने दे आभा, तू तो उसका सर दर्द बढ़ा देगी. मै अभी अदरक की चाय लाती हूं, तेरा दर्द भाग जायेगा.'' विभा उठ कर किचेन में चली गयी.

''सच कहो, अगर चाय पीना छोड़ दूं तो तुम्हारा समय बचेगा?'' जैकी की मुग्ध दृष्टि आभा पर निबद्ध थी.

''मुझसे क्यों पूछ रहे हो, मैंने तो तुम्हारी पत्नी के बारे में कहा था.''

''उसी से तो पूछ रहा हूं.'' गंभीर आवाज़ में जैकी ने कहा.

''जैकी हमें ऐसा मज़ाक पसंद नहीं है, समझे. अगर ऐसी बातें करोगे तो हम तुमसे बात नहीं करेंगे.'' आभा ने नाराज़गी से कहा.

जैकी कुछ कहने ही वाला था कि विभा चाय के साथ आ गयी.

''ये ले चाय और मठरी खा, पता नहीं कल कुछ खाया भी था या नहीं. कभी-कभी भूखे रहने पर भी सर दर्द

हो जाता है.'' विभा ने ममता से कहा.

''काश आप जैसी मेरी मेरी मां होतीं.'' जैकी भावुक था.

''क्यों, क्या मैं तेरी मां नही हूं?'' स्नेह से विभा बोली.

चाय का सिप लेते ही जैकी कराह उठा. हाथ में पकड़ा कप हाथ से छूट गया. दोनों हाथों से सर थाम जैकी ने मेज पर सर टिका दिया. पीड़ा से चेहरा पीला पड़ गया. विभा और आभा दोनों घबरा गयीं.

''आभा, जल्दी से मेरे कमरे से बाम ले आ और पास वाले डॉक्टर अंकल को बुला ला.''

थोड़ी देर माथे पर बाम लगाने से जैकी को आराम सा महसूस हुआ.

''अब ठीक लग रहा है, डॉक्टर बुलाने की कोई ज़रूरत नहीं है. कल एक प्रोजेक्ट पर पूरी रात काम करता रहा, शायद इसीलिए सर में दर्द हो गया. सॉरी चाय गिर गई.''

''चाय की परवाह करने की ज़रूरत नहीं है. आभा अभी दूसरी चाय बना लायेगी.''

''एक बात बता, क्या कभी पहले भी ऐसा सर दर्द हुआ है? आज तो मैं डर गयी थी.''

''पिछले कुछ दिनों से ज़्यादा रात तक काम करने पर सर भारी हो जाता है, पर आज कुछ ज़्यादा ही तेज़ दर्द था. आप परेशान न हों, मां. मैं ठीक हूं.'' जैकी ने मुस्कराने का असफल प्रयास किया, पर चेहरे पर दर्द की लकीरें स्पष्ट थीं.

कमल वापस आ गया था. उसके आने से घर में रौनक आ गयी थी. विभा पूरे परिवार का हाल-चाल पूछती रही. आभा के पापा ने आभा के लिए नये कपड़े और मिठाइयां भेजी थीं. जैकी ने आते ही मिठाइयों पर अधिकार जमाना शुरू कर दिया.

''वाह हिंदुस्तान की मिठाइयों का जवाब नहीं. आभा अगर ये मिठाइयां खायेगी तो मोटी हो जायेगी. ये तो मेरे और कमल के लिए हैं.''

''मैं मोटी रहूं या पतली, आपको क्या फ़र्क पड़ेगा, बस अब एक भी मिठाई का दाना नहीं मिलेगा, समझे जनाब.'' आभा ने मिठाइयों की प्लेट जैकी से छीन ली

''तुम दोनों की नोक-झोंक चलती रहे, इस बीच सारी मिठाई मैं ही ख़त्म कर डालूंगा'', कमल ने हंसते हुए कहा.

दिन बीत रहे थे. इस बीच अचानक जैकी अनमना सा रहने लगा. कमल के घर आना भी बहुत कम हो गया. कमल ने बताया जैकी हेड की किसी बड़ी प्रॉजेक्ट पर काम कर रहा है. काम पूरा करने के लिए रात में ठीक से सोता भी नहीं. अक्सर सर-दर्द उसे परेशान करता है. दर्द की गोलियां खा कर काम करता रहता है. एक दिन तो बेहोश सा गिर गया था. पूछने पर बोला — ''रात में नींद पूरी न होने की वजह से कभी-कभी बैलेंस बिगड़ जाता है. कभी पैर लड़खड़ा भी तो सकते हैं. तू बेकार परेशान है.'' जैकी समझाता.

''मेरी समझ में नहीं आता काम ज़्यादा ज़रूरी है या तेरी हेल्थ? शायद नोबल प्राइज़ तुझे ही मिलेगी. इस उम्र में पैर लड़खड़ाना क्या ठीक बात है?''

''अरे यह तो ठीक बात नहीं है, उससे कह किसी डॉक्टर को दिखाये.'' सुन कर विभा कंसर्न थी.

''किसी की सुनता कहां है, भूत की तरह काम में लगा हुआ है.'' कमल बताता.

जैकी ने घर आना क़रीब बंद–सा कर दिया था. उसका सर दर्द उसे परेशान कर रहा था. कमल ने जब उससे घर न आने की वजह पूछी तो जैकी ने कहा था — ''शायद रातों में ठीक से सो नहीं पाता, अक्सर सबेरे मीटिंग हो जाती है. कुछ खाने का मन नहीं करता. मां से कहना, एक बार ये प्रॉजेक्ट पूरा हो जाये तो जी भर के मां के हाथ का बना खाना खाऊंगा और आराम से ख़ूब सोऊंगा.''

आभा को जैकी की शरारत भरी बातें याद आतीं. सच तो यह था वह पुराने जैकी को मिस करती थी. जैकी के बिना जैसे उसका मन उचाट रहता. लाइब्रेरी में काम करते हुए भी वह जैकी की प्रतीक्षा करती. सोचती, क्यों वह कोई दूसरा जैकी होता जा रहा था? कहीं ऐसा तो नहीं उसे किसी और लड़की से लगाव हो गया हो! अपनी सोच को झटका दे, वह काम में मन लगाने की कोशिश करती. अपने से डरती कहीं उसे जैकी से प्यार तो नहीं हो गया था?

अचानक जैकी किसी को बिना कोई ख़बर दिये कहीं बाहर चला गया. कमल को भी उसने कुछ नहीं बताया. सब परेशान थे. ऐसा क्या हुआ कि जैकी लापता था. विभा नाराज़ थी.

''क्या हुआ कमल, तुझे भी बिना बताये कहीं चला गया. कुछ कह कर भी नहीं गया. माना कि उसे कोई ज़रूरी

लघुकथा

पानी रे पानी

✍ लक्ष्मी रुपल

बस्ती में हैंडपंप पर खाली घड़ों की मील भर लंबी कतार. गाली-गलौच तो साधारण बात थी, कुछ लोग हाथापाई पर उतर आये. धक्का-मुक्की में एक बल्ली घड़ों पर गिर पड़ी और कई मिट्टी के घड़े टूट गये. महिलाएं रोने, चिल्लाने लगीं. परंतु पास ही के पंडाल में नेताजी के भाषण की पुरज़ोर आवाज़ में महिलाओं का स्वर दब गया. वे माइक पर कह रहे थे ...'अब पानी की समस्या शीघ्र ही दूर कर दी जायेगी. अभी एक पंप है बस्ती में, शीघ्र ही कुछ और पंप लगा दिये जायेंगे.' पंडाल के एक कोने से लोगों का हो-हल्ला सुनाई दिया तो शांति बनाये रखने के लिए स्वयं-सेवक दौड़ पड़े और हाथ जोड़ कर लगे उन्हें समझाने, मनाने लगे. नेताजी ने फिर भाषण आरंभ किया, 'आज जो घड़े टूट गये हैं, सरकार उनकी भी भरपाई करेगी.'

कुछ समय के बाद कारों का क़ाफिला धूल उड़ाता हुआ सामने से निकल कर चला गया. पंडाल में बिसलेरी की सैंकड़ों खाली बोतलें जहां-तहां बिखरी पड़ी थीं. हैंडपंप में पानी समाप्त हो गया था. खाली घड़ों की कतार और भी लंबी हो गयी थी.

✆ बी ३-२०१ निर्मल छाया टॉवर्स, वी.आई.पी.रोड, ज़िरकापुर, मोहाली-१४० ६०३, मो.-९८७६२६९३६९

काम रहा होगा, पर कम से कम बता कर तो जाता.''

आभा बेचैन थी, पर अपनी बेचैनी किसी पर प्रकट कैसे करती. वह अपने आप से डरने लगी थी, कहीं उसे जैकी से प्यार तो नहीं हो गया, वरना उसकी याद उसे क्यों इस कदर बेचैन कर जाती. बेसब्री से आभा ही नहीं कमल और विभा भी जैकी का इंतज़ार कर रहे थे. डिपार्टमेंट के हेड तक को जैकी के कहीं जाने की वजह नहीं पता थी. उसका अता-पता किसी के पास नहीं था. जाने के पहले उसने एक मत्वपूर्ण प्रॉजेक्ट पूरा करके हेड की प्रशंसा ज़रूर पा ली थी.

जैकी की प्रतीक्षा में डेढ़ महीने बीत गये. कमल ने जैकी के बारे में पता करने की बहुत कोशिश की, पर कोई नतीज़ा नहीं निकला. जैकी जैसे एक पहेली बन गया था. आभा को हर पल लगता वह अचानक आकर उसे चौंका देगा. ''कहिए, मिस इतना पढ़ कर किसे इम्प्रेस करने का इरादा है. हम तो पहली नज़र में ही आप पर फिदा हो गये थे.'' फिर वही मोहक हंसी.

अगर पता होता वह ऐसा निर्मोही निकलेगा तो उससे नेह ही क्यों बढ़ाती. विभा सोचती.

एक दिन आभा लाइब्रेरी से नोट्स ले कर घर वापिस ही आने वाली थी कि लाइब्रेरी के चपरासी ने आभा के नाम का एक लिफ़ाफ़ा लाकर दिया. लिफ़ाफ़े पर बॉसटन का स्टैंप देख कर आभा खिल उठी. तो जनाब अब अपना नकाब उतार कर प्रकट हो रहे हैं. आने दो अच्छी ख़बर लूंगी. धड़कते दिल से लिफ़ाफ़ा खोला था. पत्र में किसी डॉक्टर का अंग्रेज़ी में संक्षिप्त नोट था. नोट के साथ एक सीडी थी.

'आभा जी,

आपको सूचित करते दुःख है कि मिस्टर जयकुमार अब इस दुनिया में नहीं रहे. ब्रेन ट्यूमर की लास्ट स्टेज़ होने की वजह से उनका ऑपरेशन सफल नहीं हो सका. ऑपरेशन के कुछ दिन पहले उनकी कुछ बातें रिकॉर्ड की थीं. आपको वही सीडी भेज रहा हूं. शायद आप उनके सबसे अधिक निकट थीं. सोचता हूं, इस सीडी की आप ही अधिकारी हैं.'

नीचे डॉक्टर के हस्ताक्षर थे.

आभा स्तब्ध रह गयी. आंखें भर आयीं. यह अविश्वसनीय था. पर ऐसा क्या था सीडी में कि डॉक्टर ने आभा को जैकी के सबसे अधिक निकट का समझा. जैकी अब इस दुनिया में नहीं रहा, पर आभा को तो उसकी प्रतीक्षा थी, क्यों सोचती थी कभी आकर वह ज़रूर कहेगा — ''मेरा इंतज़ार कर रही थीं ना, सच कहना मेरे बिना मन जो नहीं लगता होगा. वैसे तुम्हारी याद तो मुझे भी आती थी, मिलने के दिन गिन

रहा था. अब और नहीं सताऊंगा. वादा रहा.''

घर में सबके सामने सीडी पर जैकी की बातें सुनना क्या ठीक होगा, डॉक्टर ने क्यों लिखा है इस सीडी की वही सच्ची अधिकारिणी है? नहीं, अभी किसी एकांत कोने में बैठ कर जैकी की अंतिम बातें, आभा अपने लैप टॉप पर अकेले ही सुनेगी. कांपते हाथों से आभा ने सीडी लगायी थी. डॉक्टर जैकी से पूछ रहे थे — ''ठीक हो कर सबसे पहले किससे मिलना चाहोगे, जयकुमार?''

''आभा से, डाक्टर, अपनी ज़िंदगी मैने उसी के नाम जो कर दी है.''

''बहुत प्यार करते हो आभा को?''

''प्यार किसे कहते हैं,आभा से मिलने पर ही जाना है. आभा मेरे दिल की धड़कन है, डॉक्टर. पहले दिन से ही उसकी ओर खिंचता चला गया. सच कहूं तो अपनी ज़िंदगी को कभी अहमियत नहीं दी. पर अब ज़िंदगी का मज़ा आने लगा था. उसका साथ अच्छा लगता, उसे छेड़ने में मज़ा आता. अपनी बीमारी के ये दिन बस उससे मिलने की चाह में बिता रहा हूं.''

''उसे अपने ऑपरेशन की ख़बर दी है?'' डॉक्टर ने जानना चाहा.

''नहीं, डॉक्टर, ठीक होने पर जब सरप्राइज़ दूंगा, तब मज़ा आयेगा.''

''अपने किसी परिचित, रिश्तेदार को भी यहां आने की खबर नहीं दी?''

''नहीं डॉक्टर, ब्रेन ट्यूमर डायग्नोस करते ही मेरे डॉक्टर ने मुझे फौरन आपके नाम रेफरेन्स लेटर देकर बिलकुल इंतज़ार ना करने की सलाह दी थी. उनकी इस बात से समझ गया था कोई गंभीर बात है, आभा या अपने दोस्त को डराना नहीं चाहता था.''

''आभा भी तुम्हें इतना ही प्यार करती है, जयकुमार?''

''मैने कभी जानने की ज़रूरत ही नहीं समझी, अपने प्यार पर विश्वास है, वह कुछ ना भी कहे, पर मैं जानता हूं, वह भी मुझे चाहती है. मुझे जीना है,डॉक्टर, मैं ठीक हो जाऊंगा न?''

''हम पूरी कोशिश करेंगे. यह चमत्कार ही है कि तुम्हारी स्मृति ठीक है वरना इस हालत में अक्सर रोगी किसी को पहचानते तक नहीं. अब आराम करो.''

आभा के आंसू रोके नहीं रुक रहे थे. जैकी को आभा के प्यार पर इतना विश्वास ग़लत तो नहीं था. जब से जैकी का अता-पता नहीं था आभा किस कदर बेचैन रहती. विभा से जैकी की बातें सुनती उदास हो जाती. शायद कोई भी दिन ऐसा नहीं गया जब उसने जैकी को याद न किया हो. जैकी जैसे उसके जीवन में उजाला ले कर आया था, अब वो उजाला अंधकार में विलीन हो गया था. जिसे अपनों से भी प्यार नहीं मिला, उसे आभा के प्यार पर इतना विश्वास था. आभा से ही उसने प्यार का अर्थ जाना था. काश आभा उसे बता सकती, वह जय को चाहने लगी थी, शायद उसकी यह बात अंतिम समय में जय को इस दुनिया से विदा लेते संतोष दे जाती.

बहुत देर हो चुकी थी. उजली धूप की जगह शाम के काले साये घिरते आ रहे थे. आंसू पोंछ आभा घर जाने को उठी थी. नहीं, वह जैकी की आख़िरी बातें किसी के साथ शेयर नहीं कर सकती, वह नितांत उसकी अपनी निधि है कमल और विभा बुआ से इतना कहना ही काफ़ी होगा, उसके फ़ोन पर किसी ने जैकी की मृत्यु की सूचना दी थी. आभा ने उस नंबर पर फ़ोन लगाने की कोशिश की, पर फ़ोन किसी पब्लिक बूथ से किया गया था, शायद किसी ने मज़ाक किया हो — अच्छा है वे इसी ख़ुशफ़हमी में जीते रहें, उनका जैकी कभी वापस आएगा.

138/9, AE 37th Pl,
Bellevue, WA 98002
e-mail: pushpasaxena@hotmail.com
ph. 425-306-0009 (C)

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

- संपादक

कहानी

इंसान होने का अपराध

✍ डॉ. नीहारिका

'क्यों बे! स्कूल का अनाज चुराते शरम न आयी तुझे? ऐं? इत्ते छोटे-छोटे बच्चों का भोजन था यह. और तैने चुरा लिया? इसी के लालच में तो स्कूल जायें हैं सब. और तैं वही चुरा लियो.' दारोगाजी पतरू को ठुनकी मार-मार के धमका रहे हैं. ज़मीन पर घुटनों के बल बैठा पतरू दारोगाजी की दमदार ठुनकी पर ही लुढ़क-लुढ़क जा रहा है. देह में जान ही कहां है उसके कि दारोगाजी हाथ–लात उठा सकें उस पर. सो रह-रह कर बस ठुनकिया ही दे रहे हैं. वहीं स्कूल के प्रिंसिपल साहब भी विराजमान थे. सूचना मिल गयी थी उन्हें कि स्कूल का अनाज चोर पकड़ा गया है. सो वे भी चले आये थे. पतरू को तो पहचानते भी थे वे. वहीं स्कूल के आस-पास रिक्शा चलाता था पतरू हालांकि रोज़ ही बीमार पड़ जाता था. देह में जान ही कितनी थी जो रिक्शा खींचता. उसको देख कर वैसे भी सवारी भाग जाती. रिक्शा खींचता भी तो ऐसे सांस भर-भर कर चलाता कि सवारी डर जाती कि कहीं यही इसकी आख़िरी सांस न हो. ऊपर से गांव में वैसे भी कौन सी सवारी रखी थी. कभी कभार बाहर से कोई आता तभी रिक्शा खोजता वर्ना सब पैदल ही रास्ता पार कर लेते थे. पतरू के पास कभी पैसे बच ही न पाते कि रिक्शा खींचने के अलावा कुछ और काम करने की सोच भी पाता. वो तो रिक्शे वाला भला आदमी था इसलिए रिक्शा अपने स्टैंड में खड़ा रखने की जगह पतरू को चलाने के लिए दे देता और आमदनी होने पर दस प्रतिशत रखवा लेता.

छोटी सी जगह है मधुबन गांव. कौन आया, कौन गया, किससे मिला, क्या ख़रीदा, क्या खाया सब सबको मालूम पड़ जाता था. इसलिए आमदनी छुपाने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी. कभी-कभी पतरू ने कोशिश की थी मूंगफली, दाना वग़ैरह बेचने की लेकिन कभी सफल नहीं हो पाया. माल ही इतना कम ख़रीद पाता था कि उसका खोमचा कभी आकर्षक लग ही न पाता, उस पर उसकी सूखी सी देह. ग्राहक को दूर से ही भगा देती. इसी ग़रीबी, मज़बूरी ने चमेलिया की जान भी ले ली. चौथा बच्चा जनने चली थी वो. शरीर में दम तो था नहीं. न बच्चा बचा न चमेलिया. दोनों की इहलीला दस मिनटों में ख़त्म हो गयी. किसी से मदद भी नहीं मांग पाया पतरू. रात के दो बजे पीड़ा से कराह उठी थी चमेलिया. चंपा, सोनू, गुड्डू तीनों बच्चे भी उसकी हाय-हाय सुनकर जग गये थे और मां को घेरे बैठे थे. मिनटों में ही सब कुछ निबट गया. पहले बच्ची जनमी और क्षणों में उसकी सांस थम गयी. फिर चमेलिया! 'चंपा के बाबू! बच्चों का खियाल करना....' और फिर लंबी सांस खींच हमेशा के लिए सो गयी. रिक्शा मालिक से थोड़ा बहुत पैसा उधार लेकर चमेलिया का संस्कार कर दिया और पंडितजी को सवा पाव गेंहू देकर दसवां तेरही भी संपन्न मान लिया. इससे ज़्यादा की तो औकात भी नहीं थी पतरू की. अब समस्याएं और विकराल मुंह बा कर खड़ी होने लगीं. पांच, तीन और एक साल के बच्चों को छोड़कर कहां जाये, कैसे जाये? और अब कौन सा नया काम करे कि इन बच्चों के मुंह में दोनों जून थोड़ा खाना डाल सके?

उस रात, उस रात जब उसने स्कूल के गोदाम से अनाज चुरा लिया. क्या करता वो? और क्या कर भी सकता था वो? भूख से बिलबिलाते बच्चे सोने की कोशिश कर रहे थे. झूठ-मूठ ही आटे के पैकेट को झाड़-झाड़ कर थोड़ा सा आटा पाया था उसने और उसे ही पानी में मिला साल भर के गुड्डू को दूध के बहाने ढकेल रहा था. तभी सोनू भी जाग उठा और 'दुद्धू...दुद्धू' करके रिरियाने लगा. जब पतरू ने उसे संभालने की कोशिश की तो पैर पटकता वह गुड्डू से बोतल छीनने लगा. फिर तो चंपा भी जाग गयी. घर छोटे-छोटे सैनिकों का युद्ध का मैदान बन गया. कोई इसे नोंच रहा है कोई उसे दांत काटे ले रहा है तो कोई किसी के बाल खींच रहा है. आटे से बने दूध का कटोरा उनके पैरों से लग

जन्म : २३ सितंबर, १९५८, वाराणसी में
शिक्षा : एम. ए. (प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व), पी. एच. डी. (ए स्टडी ऑफ स्टोन बीड्स इन सिन्धियेंट इंडिया), काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी से।

प्रकाशन : *इतिहास से संबंधित सात पुस्तकें हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा में भारत और मलेशिया से प्रकाशित, कहानी संग्रह 'नामालूम रिश्तों का दंश' प्रकाशित: अनेक कहानियां, लेख, यात्रा वृत्तांत, व्यंजन विधियां आदि कथादेश, वर्तमान साहित्य, साहित्य अमृत, राष्ट्रधर्म, गृहशोभा, सरिता, वनिता, साप्ताहिक हिंदुस्तान, आज, आनंद डाइजेस्ट, दीपज्योति, नवसाक्षर: कहानी लेखन आदि में प्रकाशित व पुरस्कृत.*

अन्य *: कहानियों का कन्नड़ भाषा में अनुवाद: कहानी संग्रह 'नामालूम रिश्तों का दंश' पर शोध: महाराष्ट्र के स्नातक पाठ्यक्रम में 'नारी तुम केवल सबला हो' सम्मिलित.*

संप्रति *: श्री अग्रसेन कन्या पी. जी. कॉलेज, वाराणसी में अध्यापन: 'अर्णव' शोध पत्रिका का संपादन व प्रकाशन.*

ढुलक गया. अब तो पतरू का लाचार दुःख क्रोध में बदल गया और उसने धमाधम तीनों मासूमों को चपतियाना शुरू कर दिया. बच्चों को भी चपत लगाता जाता, अपना भी माथा पीटता जाता. उधर बच्चे रो चिंचिया रहे थे इधर पतरू रो कलप रहा था. बिचारी पांच साल की चंपा. बच्चों में सबसे बड़ी थी तो बड़ापना निभाने लगी. 'बाबू!' हम्मे दूद्धू न चाही. हम्में भूख न है.' पतरू के आंसू पोछने लगी वह नन्हीं सी बच्ची. फिर किंकिया रहे छोटे भाइयों के पास पहुंच उन्हें चुप कराने लगी. अपनी नन्हीं समझ से मां से सुना गीत आंसुओं और सिसकियों में डूब-डूब कर गाने लगी, 'ना रो सोनू ना रो गुड्डू. चंदा मामा आयेगा, दूध मलाई लायेगा, हमरे सोनू को खिलायेगा, हमरे गुड्डू को खिलायेगा, पलना में झुलायेगा.' दोनों छोटे बच्चे बहन के आंसू और गीत सुनने-गुनने लगे. कीचड़ सनी आंखों में मोटे-मोटे आंसू अटके पड़े थे. माटी सने चेहरों पर आंसू से सूखी नदियां बन गयी थीं. नंग-धडंग काले, धूसर बच्चे एकदम प्राकृतिक अवस्था में रिरिया रहे थे. सिर पकड़े पतरू बैठा निर्विकार भाव से उन्हें निहार रहा था. ख़ुद उसके पेट में भी भूख से मरोड़ें उठ रही थीं. तभी चंपा बोली, 'बाबू! कल से हम हूं पढ़े जाबे इस्कूल. उहां न! खाना मिले है, क़िताब-कॉपी मिले हैं. हम जाबे उहां और आपन हिस्सा का खाना ले के घर भाग आइबे फिर हम चारों जना खइबे उ खाना.'

चंपा की इस बात ने तो जैसे पतरू के ज्ञान चक्षु खोल दिये. एकाएक ही झटके से उठा वह, चंपा और सोनू के हाथ पकड़े और गुड्डू को कमर पर टांग बड़े विश्वास से बोला, 'चल, चल, हम खाना लायेंगे. ढेर सारा खाना. फिर केहू भूखा न रहेगा. चल, चल हौउरा न करिए. चुप्पे चुप्पे चल.'

चंपा फुसफुसायी, 'कहां बाबू? कहां है खाना?' पतरू ने उसके खुले होठों और फैली आंखों को अपनी हथेली से ढांप दिया. चंपा बड़ी समझदार है. बस तुरंत ही समझ गयी कि आवाज़ नहीं करनी है. किसी ख़ुफिया काम पर निकला है उसका पूरा परिवार बाबू के नेतृत्व में. चारों स्कूल के पिछवाड़े पहुंचे. चारों ओर घना अंधियारा था. हाथ को हाथ न सुझाई दे — ऐसा घना काला अंधियारा था. बाबू ने चुपके से गुड्डू को चंपा को थमाया और अपने होठों पर उंगली रख तीनों को चुप रहने का इशारा किया और उस घुप्प अंधियारे में जाने कहां विलीन हो गया. सोनू और गुड्डू डर के मारे चंपा से चिपक गये लेकिन चंपा किससे चिपके? उससे बड़ा तो वहां कोई था नहीं सो वो धप्प से ज़मीन में बैठ ज़मीन से ही चिपक गयी. कितनी

ही देर बीत गयी या शायद अंधेरे और डर की वजह से लग रहा है कि बहुत देर हो गयी. शायद अभी इतनी देर भी नहीं हुई है. अंधेरे में ही चंपा ने गुड्डू की आंखें टटोली हैं. सो गया है वह. सोनू और भी ज़्यादा चिपका जा रहा है. दोनों एक दूसरे में गुड़ी मुड़ी हुए जा रहे हैं. चंपा अंधेरे में आंखें फाड़े उधर ही ताक रही है जिधर से पतरू गया है. कुच्छ नहीं दिखायी देता. सिवाय अंधेरे के. तभी लगा जैसे कोई आ रहा है. शायद बाबू, शायद भूत-प्रेत, चुड़ैल! कौन होगा? चंपा की तो आंखें भी झपकना भूल गयीं. बड़ी-बड़ी आंखें और भी बड़ी होकर उस आने वाले को देखने की कोशिश करने लगीं, बिना कोशिश के ही.

तभी एक छाया सी आती दिखी. वो छाया इधर ही आ रही है, इधर ही. चंपा की ओर. चंपा का मन किया जोर से चीख़े 'बाबू.' लेकिन जीभ तो हलक से चिपक गयी थी, हाथ पैर सुन्न हो रहे थे. मां की भी बड़ी याद आयी. मां होती तो, मां की गोद में ही छिप जाती वह. लेकिन अभी तो वह काली छाया पास और पास आती ही जा रही है. चंपा डर से थर-थर कांपने लगी. छाया बिल्कुल ही पास आ गयी और शायद उसे खाने के लिए उसके ऊपर झुक गयी कि तभी बाबू की आवाज़ आयी, 'चंपा. ये बोरिया संभाल कर रख. मैं अभी आया.' ओह? तो ये बाबू ही था. कोई भूत–प्रेत नहीं. चंपा की जान में जान आयी. जब तक वो ठीक से समझती कि कैसी बोरी, पतरू फिर अंधेरे में विलीन हो गया. थोड़ी देर में फिर एक बोरी लेकर आया वह. उसके बाद एक आधी भरी बोरी लेकर. फिर सब घर की ओर भाग चले. एक बोरी पतरू ने सिर पर उठायी. दूसरी आधी भरी वाली कमर पर लादी, तीसरी भरी बोली को वहीं छिपा दिया और सब घर की ओर भागे. छोटी सी चंपा ख़ुद को संभाले या गोद में पकड़े गुड्डू और हाथ में थामे सोनू को. लेकिन गिरती पड़ती वो भाग रही थी और सोनू को भी भगाये लिये जा रही थी. उन सबको और डेढ़ बोरियों को घर पहुंचा कर पतरू ने फिर चंपा को समझाया. आख़िर सबसे बड़ी थी वो. 'हम अब्बे तीसरी बोरिया भी ले के आते हैं. तुम सब चुप्पे बैठे रहना.' फिर तीसरी बोरिया भी आ गयी.

अहा ! आज तो घर में राजे रजवाड़ों का सुख वैभव आ गया. बस मज़ा ही आ गया. उसने तुरंत आग जलायी और थोड़े चावल पकने के लिए चढ़ा दिये. तीनों बच्चों के चेहरे उस आंच में कैसे लाल पीले से होकर चमकने लगे. सुबह के उगते सूरज जैसी नारंगी पीली आभा ने उनके उदास मुखड़ों को कितना सुंदर बना दिया. बिना कारण ही वे सब हंस रहे, खिलखिला रहे. बिना कारण ही पतरू हंस रहा था, अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को दुलार रहा था. अभी थोड़ी देर पहले ही तो उसने कितनी बेरहमी से इन्हें पीटा है. आंसू की सूखी नदियां गालों पर अब भी दिख रही हैं लेकिन अब इन नदियों में आशा और उम्मीद की, ख़ुशी की, भूख के अंत की सुनहरी आभा मिल गयी है. 'बाबू! हम खाना खायेंगे न? ढेर सारा खाना न?' सोनू पूछ रहा है.

'हां ! मोर बचिया! अब हम सब खाना खायेंगे. अच्छा-अच्छा खाना खायेंगे. अब हमें कब्बो भूख ना सतायेगी, कब्बो नहीं.' पतरू गदगद हुआ जा रहा है. पहले भूख से मरोड़े उठ रही थीं केवल पेट में, अब सारे शरीर में सुरसुरी दौड़ रही है. ख़ूब बढ़िया भात बना है. भात में नमक मिलाकर उसने बच्चों को खिलाना शुरू किया. पहले बच्चों को भरपेट खिलायेगा फिर बचा हुआ ख़ुद खायेगा. अब तो कुछ दिनों तक कोई कमी नहीं रहेगी. तब तक कुछ न कुछ और जुगाड़ कर ही लेगा. बच्चों को ठंडा करके भात खिला रहा है पतरू. कुछ तो बेहद ज़्यादा भूख है और कुछ जल्दी से जल्दी ज़्यादा खा लेने का उतावलापन! कि वे भात को चबा भी नहीं रहे. बस फटाफट निगल रहे हैं. और फिर मुंह बा दे रहे अगले कौर के लिए. इतनी जल्दी मची कि पहले से तीसरा पहुंचने से बहुत पहले ही पहला फिर मुंह खोल देता. अब चंपा भी भाइयों को खिलाने लगी. फिर उसने एक कौर पतरू की ओर बढ़ाया. ज्यों पतरू ने खाने के लिए मुंह खोला उसकी आंखें भर आयीं. काश आज चमेलिया भी होती. काश आज उसकी वो नन्हीं सी बच्ची भी होती जो आते ही इस दुनिया से चली गयी. आंसुओं के कारण आंखें धुंधलाने लगीं तो सोनू ने उठकर उसके आंसू पोंछ दिये और अपनी भोली आवाज़ में पूछने लगा, 'बहुत ज़ोर की भूख लगी है बाबू? तुम पहले खा लो. फिर हम खायेंगे. लो बाबू लो, खाओ.'

फिर तो सब एक दूसरे को खिलाने लगे. मिनटों में सारा भात ख़त्म हो गया. चूल्हे की आंच मध्यम होते-होते बुझने लगी थी. साथ ही उन चारों के पेट की आंच भी बुझ

चुकी थी. एक दूसरे के गले में बाहें डाले सब सो गये.

सुबह पतरू और बच्चे देर तक सोते रहे. सबसे पहले पतरू ही उठा. तीनों बोरियों को कोने में रख कर ऊपर से पुआल और कपड़े लत्ते डालकर उन्हें छिपा दिया. खटर-पटर सुनकर चंपा की नींद खुल गयी थी. वह बिटर-बिटर बाबू को ताक रही थी. तभी पतरू की निग़ाह उस पर पड़ी. वह जल्दी से उसके पास आया. उसकी नन्हीं सी बेटी ने बहुत समझदारी दिखायी थी अब तक. आगे भी ऐसे ही करना है. 'देख बच्ची. किसी से बोलना नहीं कि हमारे पास चावल है, हमारे पास चना है. ठीक है न? किसी से भी न बोलना.' पतरू ने चंपा को समझाया तो बड़ी बूढ़ियों की तरह उसने समझदारी से गरदन हिला दी. फिर पतरू रोज़ की तरह बाहर निकल गया. काम तो करना ही पड़ेगा. ये अनाज भी चार जनों में कितना चलेगा? आगे-आगे जोड़ता रहेगा तभी तो सुभीता रहेगा. लेकिन बाहर तो हड़कंप मचा हुआ था. प्रधान चाचा के दलान वाले नीम के पेड़ के नीचे प्लास्टिक की कुर्सी पर प्रधान चाचा और स्कूल के प्रिंसिपल साहब बैठे थे. सामने ज़मीन पर स्कूल का चौकीदार/चपरासी/रसोइया बैठा ज़मीन कुरेद रहा था. एक ही आदमी स्कूल में तीनों काम करता. दिन भर चपरासी रहता तो थोड़ी देर के लिए रसोइया होकर बच्चों का मिड-डे मील बनाता और रात में चौकीदार बनकर सीटी बजाता स्कूल के अहाते में एकाध चक्कर लगाकर फिर लंबी तान कर सो जाता. तभी तो पतरू इतने आराम से अनाज की बोरियां ले आया था. इन गणमान्य लोगों को घेरे खड़े थे गांव के स्त्री, पुरुष, बच्चे. एक अजीब सा कोलाहल मचा हुआ था हर तरफ़.

'क्यों रे? ऐसे ही चौकीदारी करता है तू कि कोई पट्ठा चावल चने की बोरियां ले गया और तुझे पता भी नहीं चला?' प्रधान जी ने प्रधानी झाड़ी.

'नहीं मालिक! एक क्षण को आंख लगी होगी तभी मुआ ले गया होगा, वर्ना आपकी कसम! हम तो पूरी रात जगे रहे थे.' चौकीदार हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया.

'चुप्प कर! अभी दारोगाजी आते होंगे. दो डंडे लगायेंगे तो सब उगल देगा.'

'नहीं मालिक! ऐसा न करना. बेमौत मर जाऊंगा मालिक! मालिक!!' चौकीदार प्रधान के पैरों में गिर रोने लगा था. तभी पुलिस की जीप आती दिखी. हर कोई सतर्क हो गया. जीप के पास आते ही सबने तितर-बितर होकर रास्ता बना लिया. जीप ऐन प्रधानजी की कुर्सी के बगल में झटके से रुकी. प्रधान और प्रिंसिपल साहब हाथ जोड़कर खड़े हो गये.

'आइए साहब, आइए! आपके रहते चोर ससुरे की इतनी हिम्मत हो गयी कि स्कूल से अनाज चुरा ले गया.' प्रधान जी ने खींसे निपोरीं.

'नैतिकता तो रह ही नहीं गयी लोगों में. पहले चोरों में भी नैतिकता होती थी. अरे यह तो छोटे-छोटे बच्चों के मुंह का निवाला था. इसे चुराना! घोर पाप है यह तो.' प्रिसिंपल साहब बोले.

'हूं' मुंह में पान घुलाये दारोगा जी ने सिर्फ़ एक बड़ी–सी हुंकार भरी और कुर्सी पर विराजमान हो गये. फिर पुलिसिया छानबीन शुरू हुई. कहां रखा था अनाज, कितना था, कितना चोरी गया, पहले कभी ऐसा हुआ है, वग़ैरह वग़ैरह. चौकीदार को भी एक आध झापड़ रसीद किया उन्होंने. लेकिन बात कुछ बनी नहीं. कोई बाहरी आदमी तो नहीं आया हुआ है आजकल गांव में? इस पर भी चर्चा हुई. लेकिन निष्कर्ष कुछ नहीं निकला. फिर?

फिर इस बीच प्रधान जी के घर से गरमागरम हलुवा और प्याज की पकौड़ियां आ गयीं तो जांच बंद करके खाने-पीने का कार्यक्रम संपन्न होने लगा. इधर-उधर की बातें होने लगीं.

उधर पतरू के बाहर निकलने के बाद सोनू जगा और फिर गुड्डू. आज रोज़ की तरह दोनों खिनखिनाये नहीं, ख़ुश-ख़ुश उठ गये. रात के भरे पेट की खुमारी थी. सो एक दूसरे से गुत्थम गुत्था होते खेलने लगे. रात की जूठी बटलोई पड़ी थी. चंपा ने सोचा इसे मांज, धो दे तो बाबू आकर तुरंत ही भात बना देगा. बटलोई और कलछुल लेकर वो गांव के हैंडपंप पर चली तो पीछे-पीछे सोनू और गुड्डू भी चल दिये.

'ऐ चंपा! क्या ले जा रही है रे?' छुटरू पूछते हुए चंपा की ओर लपका.

'कुच्छ नई', कहती चंपा और तेज़ी से आगे बढ़ ली. छुटरू गांव का सबसे ख़ुराफाती और घाघ बच्चा है. आते-जाते हर आदमी, हर औरत और बच्चे को तंग करना उसकी आदत में शुमार है. मतलब, बेमतलब सबको

परेशान करने में उसे बड़ा मज़ा आता है. चंपा आगे निकल गयी तो क्या उसके छोटे-छोटे दोनों भाई तो लुढ़कते-पुढ़कते इधर ही आ रहे हैं. उन्हें ही चिढ़ा लेगा वो.

'क्यों रे सोनू? चंपा क्या ले के भागी बटलोई में? कुछ खाने का था उसमें? तुझे नहीं दिया? बोल न?' बदमाशी में कहा छुटरू ने.

लेकिन उसके इस पूछने ने नन्हें सोनू बाबू को बहुत भाव दे दिया. मैं सब जानता हूं वाले भाव से सीना फुलाकर बोले, 'नई. अब्बी तो कुछ नहीं बटलोई में. अब्बी छम्पा, साप कर देगी तो बाबू भात बनायेगा.'

'भात कैसे बनायेगा बाबू तेरा?'

'हम सब लात को बोड़ा भड़-भड़ के भात लाये हैं सुकूल से. वा ऽ ऽ ऽ ई.' सोनू ने अपनी तोतली भाषा में सारा भांडा फोड़ दिया.

छुटरू जैसे घाघ बच्चे को समझते एक क्षण भी न लगा और वह पेड़ के नीचे लगे जमावड़े की ओर भागा. 'चोर मिल गया चोर मिल गया. बाबू रे ऽ ऽ ऽ चोर मिल गया. परधान चच्चा चोर मिल गया. मास्साब चोर मिल गया.' चिल्लाता लपका वो.

आगे के क़िस्से में कुछ नहीं रखा. इस बार जब दरोगा जी फिर 'क्यों बे' करते पतरू को ठुनकियाने आगे बढ़े प्रिंसिपल साहब ने उन्हें हाथ पकड़कर रोक लिया. बुजुर्ग आदमी थे. नरम दिल थे. प्रधान जी का दिल भी पसीज गया और दारोगाजी का भी. पतरू भूख की सच्चाई की प्रतिमूर्ति बना बैठा था. किसे दोष दें वे सब? पतरू की अवशता को? पतरू के बापपने को जो बच्चों की भूख को न सह सका या व्यवस्था को, समाज को? लोगों ने मिल कर तय किया चोरी की रिपोर्ट न लिखी जाये न उसके बारे में कोई बात की जाये. वर्ना पतरू तो जेल चला जायेगा उसके बच्चे कहां जायेंगे? बोरियां उठवाकर वापस स्कूल में रखवा दी गयीं. चोरी के इल्ज़ाम से और उसकी सज़ा से तो बच गया पतरू लेकिन बाप होने और उससे भी पहले इन्सान होने के अपराध से कैसे बचे पतरू?

द्वारा श्री अजय श्रीवास्तव,
उप अधीक्षक पुरातत्वविद् पुरातत्व संग्रहालय, सारनाथ, वाराणसी-२२१००७,
मो.-९४११५३५४७८०

लघुकथा

सर्विस बुक

आनंद बिल्थरे

-बड़े बाबू, मेरा पेंशन केस? दो साल से भटक रहा हूं.

- अरे, मरे क्यों जा रहे हो. जरा धीरज रखो. धीरज का फल, मीठा होता है. बात यह है रामधन, कि तुम्हारी सर्विस बुक, मिल नहीं रही है.

-हुजूर, यहीं दफ़्तर में तो थी मेरी सर्विस बुक. जायेगी कहां?

-भई, ढूंढ़ तो रहे हैं. जैसे ही मिली पेंशन केस, तैयार हो जायेगा. ऐसा करो, तुम अगले सप्ताह आकर पता कर जाना.

रामधन उठा और बाहर कैंटिन की बेंच पर जाकर बैठ गया. अचानक तेल, हल्दी के दागों से भरा एक काग़ज़ का टुकड़ा, उसके पांव से आकर टकराया. उसने उत्सुकता से, उसे उठाकर देखा. उसे लगा, उस पर, हज़ारों बिजलियां, एक साथ, टूटकर, गिर पड़ी हैं. उसकी सेवा पुस्तिका का जाना पहचाना, कटा-फटा पृष्ठ उसके हाथ में था और वह, संज्ञाशून्य-सा, टकटकी लगाये उसकी ओर देख रहा था.

प्रेमनगर, बालाघाट-४८१००१. मो.-८३५८९२१००५

लघुकथा

बर्थ-डे पार्टी

✍ मनोज अबोध

'भाई त्यागी जी, आप तो कॉर्पोरेशन के आफ़िस में हैं, अपने सेक्टर का कंम्यूनिटी हॉल दिलवा दो... बस, दो घंटे के लिए.... बेटे की बर्थ-डे पार्टी है यार.'

'सेठी डील करता है यह सब तो...साला हरामी है...दस हज़ार जमा करवा कर ही मानेगा...अन्ना समझता है ख़ुद को.'

'यह तो महंगा पड़ेगा गुरू...इतना तो बुकिंग एमॉउंट ही हो गया... फिर शामियाना, कैटरिंग...डी-जे...कुछ सस्ते का जुगाड़ कराओ भाई...'

'अरे तुम अपनी गली में रोड पर ही शामियाना लगवा कर क्यों नहीं कर लेते...दो घंटे की ही तो बात है...सीधे पोल से बिजली का कनेक्शन डालना...सारे ख़र्चे बच जायेंगे.' त्यागी ने सिगरेट का कश खींचते हुए सुझाया.

'रोड ब्लॉक कैसे कर सकते हैं? किसी ने पुलिस को शिकायत कर दी तो फिर उनका पेट अलग से भरो...'

'अरे कुछ नहीं होगा...बच्चे का बर्थ-डे है...,कुछ भजन-कीर्तन करोगे कि नहीं...नुक्कड़ के मंदिर से भजन संध्या का बैनर ले आना...गेट पर लटका देना...बस! सामने तख़्त पर भगवान जी की तस्वीर रखना...पार्टी शुरू होने से पहले डीजे पर एक दो सीडी भजनों की लगवा देना... फिर देखना...कोई कुछ भी न कहेगा... न सड़क से गुज़रने वाले...न पुलिस...'

'हां यार, यह तो आपने ख़ूब बताई...मेरे तो ख़याल में ही न थी यह बात...तभी पिछले हफ़्ते गुप्ता जी ने तो पूरी सड़क ही बंद कर दी थी... उनके बेटे की मंगनी की रस्म जो थी.'

✉ एफ-१/१०७, भूतल, सेक्टर-११,
रोहिणी, नयी दिल्ली-११००८५.
मो. ९९१०८८९५५४

ग़ज़ल

✍ गौतम राजरिशी

शोर है क़द-काठी का, पैमाइशों की बात हो,
आग के मेले सजे हैं, आतिशों की बात हो ।

हौसला है, पंख हैं, छूने को है आकाश भी,
अब न परवाज़ों पे कोई बंदिशों की बात हो ।

मत करो बातें कि दरिया ने डुबो दी बस्तियां,
साहिलों ने की है जो उन साजिशों की बात हो ।

यूं तो निकले हैं बहुत अरमान अपने भी मगर,
जो हैं बाकी उन सुलगती ख्वाहिशों की बात हो ।

धूप के तेवर तो बढ़ते जा रहे हैं दिन-ब-दिन,
अब रहम धरती पे हो, अब बारिशों की बात हो ।

कीमतें छूने लगीं ऊंचाइयां आकाश की,
दौर ऐसा है कि क्या फरमाइशों की बात हो ।

'यूं ही चलता है' ये कह कर कब तलक सहते रहें,
कुछ नये रस्ते, नयी कुछ कोशिशों की बात हो ।

✉ द्वारा, डा.रामेश्वर झा, वी.आई.पी. रोड, पूरब बाजार,
सहरसा (बिहार)-८५२२०१ मो.: ९७९७७९५९३३

कहानी

सॉरी बेटे....

✍ माला वर्मा

आज लोन की अंतिम किस्त भी चुका दी गयी. क्या बताऊं हम पति-पत्नी कितने दिनों के बाद रिलैक्स मूड में थे. यकीन नहीं हो रहा था इतना बड़ा प्रॉजेक्ट, इतनी बड़ी आशा, वर्षों की संजोयी आस, एक दिवा-स्वप्न इतनी आसानी से पूरा हुआ और यह सब कुछ नीलाभ के कारण.

भर नज़र छोटे बेटे की तरफ़ देखा जो सेहरा बांधे दूल्हे की ड्रेस में बहुत हैंडसम लग रहा था. कहीं मेरी नज़र न लग जाये. कजरौटा से काजल लेकर उसे छुआ दिया. मां की नज़र भला आजतक किसी बेटे को लगी है, हां दुनिया की बद नज़र उसे न लगे. आंखों में तिर आये थोड़े आंसू. मेरी इस औचक हरकत से नीलाभ कह उठा — ''ये क्या मम्मी, मैं कोई बच्चा तो नहीं जो किसी की नज़र लग जाये, नज़र तो आपको लगनी चाहिए जो इस उम्र में भी इतनी प्यारी लग रही हैं...'' कहते हुए नीलाभ आगे बढ़ा और मुझे बाहों में थाम लिया.

''हटो-हटो, क्या कर रहे हो? यह कोई लंदन नहीं.'' मेरी बात सुनकर नीलाभ हंस पड़ा — ''अच्छा तो अपनी मां को प्यार करने में भी देश-विदेश की सोचनी पड़ेगी? मेरी मां हो, चाहे जितना प्यार करूं. इस बार लंदन गया तो जाने कब लौटूं. काम की अधिकता से छुट्टियां मिलनी मुश्किल हैं. इस बार की छुट्टी तो शादी के नाम पर मिली है वह भी मेरी ख़ुद की शादी थी वरना वे तो यही कहते किसी दूसरे को भेज दो. ऑफ़िस का एक बंदा तो यह भी सुझाव दे रहा था इंटरनेट पर शादी करके वाइफ़ को यहीं बुला लो. अगर ऐसी तकनीक से हमारी भारतीय शादी होने लगे तो शायद ही कोई शख़्स विदेश से आकर परंपरागत ढंग से शादी करने की छुट्टी पा सके...''

बेटे की बात सुन मैं कह उठी.... ''भाड़ में जाये तुम्हारा लंदन का काम और वहां के विदेशी मालिक. पैसा ज़्यादा दे रहे हैं इसका मतलब यह तो नहीं कि बेटे को पूरा चूस ही लें. आख़िर कितने दिनों से हम भी आस लगाये बैठे थे कि बेटे की शादी धूमधाम से करें और तुम्हारा घर-संसार बसते देखें. हमें भी तो अपनी ज़िम्मेदारियों से मुक्ति चाहिए...''

''इतनी हड़बड़ी किस बात की मम्मी! अभी तो मैं आपको और पापा को पूरा यूरोप घुमाने की सोच रहा हूं. पहले अपनी गृहस्थी ठीक कर लूं फिर जल्दी ही आप दोनों को वहां बुलाऊंगा. वैसे चाहता तो मैं कई वर्षों से था लेकिन अपनी पढ़ाई और नौकरी में इतना बिज़ी था कि घुमाता क्या ख़ाक. अब कोई समस्या नहीं, बहू घर में रहेगी तो आप दोनों का ख़्याल भी रखेगी और मैं यह भी जानता हूं कि आप दोनों कभी अपना घर और भारत छोड़कर विदेश घूमने की बात नहीं सोचते. अपने तीनों बच्चों के पीछे ही जीवन गुज़ार दिया. अब आपकी ज़िम्मेदारी ख़त्म हमारी शुरू .... एकदम तनाव रहित निश्चिंत मन से आगे का जीवन बिताइए और क्या मेरा जी नहीं करता मैं अपनी मम्मी के साथ रहूं! सच कहता हूं चाहे जितना व्यस्त रहूं हर दिन आपको बड़ी शिद्दत से याद करता हू.''

नीलाभ की बात सुनकर मेरी कोरों से आंसू टपकने लगे. नीलाभ ने आगे बढ़कर मुझे थाम लिया. उसकी आंखें भी भर आयीं. माहौल थोड़ा गंभीर होने लगा था तभी पीठ पीछे पति की आवाज़ आयी....''यह भरत–मिलाप तो मैंने सुना था लेकिन मां-बेटे का मिलन पहली बार देख रहा हूं... आख़िर इतना प्यार और लाड़ किस बात पर आ रहा है क्या मुझे जानने की इज़ाज़त मिलेगी?''

अभी हमारी बातचीत आगे बढ़ती तब तक कई लोग अंदर आ चुके थे. थोड़ी देर के लिए तो मैं भूल ही चुकी थी कि आज नीलाभ की शादी है और कुछ ही देर में हमें यहां से बारात लेकर प्रस्थान करना था. मैंने अपने आप को संभाला तथा नीलाभ को औरों के हाथों छोड़कर वहां से निकल गयी. सच्ची अभी ढेरों काम बाकी पड़े थे और इधर मैं बेटे के सीने से लगी मातृ-सुख उठा रही थी. कई-कई काम, कई-कई रस्में होनी थीं. अपनी सास को देखा जो

जन्म : ३० जनवरी, १९५६, आरा-भोजपुर, बिहार
शिक्षा : बी.एस्स. सी. (बॉटनी आनर्स)

प्रकाशित कृतियां : सूरज की चाह (कविता संग्रह), परिवर्तन (लघुकथा संग्रह), बसेसर की लाठी (कहानी संग्रह), नीड़ (कहानी संग्रह), म्यूनिसिपैलटी का भैंसा (कहानी संग्रह), यूरोप (यात्रा वृत्तांत), मलयेशिया-सिंगापुर-थाइलैंड (यात्रा वृत्तांत), पिरामिडों के देश में (यात्रा वृतांत), अमेरिका में कुछ दिन (यात्रा वृतांत), चीन देश की यात्रा (यात्रा वृतांत), ग्रीस एंड दुबई (यात्रा वृतांत) अम्मा पापा (कविता संग्रह), मैंने जॉर्डन देखा ()

सम्मान : डॉ.अंबेडकर फेलोशिप अवार्ड (१९९८), साहित्य शिरोमणि सम्मान, कवि कोकिला सम्मान, श्री कृष्ण कला साहित्य अकादमी सम्मान २००१, गोविंदी बाई अवार्ड २००७, वरिष्ठ लघुकथाकार सम्मान २०१०, साहित्य सुरभि २०१०.

प्रसारण : आकाशवाणी कोलकाता से कई रचनाओं का प्रसारण.

प्रकाशन : भारत की सभी प्रमुख स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में कविता, लेख, लघुकथा, व्यंग्य, कहानियां व तथ्यपरक समसामयिक लेख आदि का अनवरत प्रकाशन. अब तक कई कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में पुरस्कृत. कई रचनाएं संग्रहों में चयनित.

हुकुमचंद जूट मिल, पोस्ट-हाज़ीनगर,
जिला : उत्तर चौबीस परगना, प.बंगाल, ७४३१३५
मो. : ९८७४११५८८३ / ९००७७४४३४६
ई-मेल : verma_mala2004@yahoo.com

पच्चासी वर्ष की उम्र में भी इतनी फुर्तीली और उत्साह से भरी थीं. मुझसे कहीं ज़्यादा एक्टिव. मैं किसी रीति–रिवाज़ या रस्म को जहां भी महटियाने की कोशिश करती वे तुरंत आगे बढ़तीं और हर काम को सुरुचिपूर्ण दायित्व से निभाने लगतीं. शादी की हर रस्म, हर कार्य और हर नेगचार पर उनकी पैनी नज़र होती. कहीं कोई भूल-चूक न होने पाये. घर के हर सदस्य को अलग-अलग ज़िम्मा दे रखा था. ख़ुद तो एलर्ट थीं ही ऊपर से जब भी मौक़ा मिलता पंडितजी के पास आ धमकतीं और रोबदार आवाज़ में कह उठतीं — ''पंडितजी हर रस्म पूरे विधिविधान और शुभ पवित्र तरीके से होनी चाहिए. हमारे पास समय की कमी नहीं. जब तक मैं ज़िंदा हूं मुझे ही अपने बेटे की घर-गृहस्थी का शुभ-अशुभ देखना है. ये आजकल की नौजवान पीढ़ी क्या जाने कि इन सबमें कितनी ताकत और कितना विश्वास छिपा है. उन्हें तो हर काम, हर पूजा-पाठ ही बेकार लगता है. वर्षों से चली आ रही खानदानी रीत व परंपरा को यूं ही नहीं छोड़ा जा सकता...''

ऐसे ही एक मौक़े पर नीलाभ की दादी आगे कुछ और नसीहत देतीं तब तक पंडितजी ने घबरा कर कोई मंत्र श्लोक पढ़ना शुरू कर दिया था. पिछले दो-तीन दिनों में जाने कई बार पंडितजी को नसीहत की घुट्टी मिल चुकी थी. इसलिए अब बेचारे जब भी दादी को क़रीब आते देखते, पट से कोई पोथी पतरा हाथ में उठा लेते या अगरबत्ती जलाने लगते. इन सब बातों का मेरे बच्चे व रिश्तेदार आनंद उठा रहे थे. पंडित जी हमारे पुराने जान-पहचान के थे और वर्षों से उनका मेरे घर में आना-जाना था. कोई भी धार्मिक अनुष्ठान हो उनको ही बुलाया जाता. वो मांजी के दबंग स्वभाव से पूर्व परिचित थे. इसलिए वे जो कहतीं वे चुपचाप सुन लेते.

नीलाभ कहने को इत्ता बड़ा हो गया लेकिन हरकतें अभी भी बच्चों जैसी ही हैं. कल सुबह दादी की गलबहियां डालीं और कह उठा, ''माई आप यहां जितना पूजा-पाठ और विधि-विधान के पीछे परेशान हैं — ऐसा यूरोप में बिल्कुल नहीं होता. वहां तो पंडिताई और ब्राह्मण बोल कर कुछ भी नहीं है. लड़के-लड़कियां ख़ुद ही अपनी शादी का फ़ैसला लेते हैं और बाद में अपने माता-पिता को बता देते

हैं. शादी–ब्याह को लेकर वहां किसी तरह का तनाव नहीं, फिर आप इतना क्यों भागा-दौड़ी कर रही हैं?

जबसे यहां आया हूं आपको ही सबसे ज़्यादा खटते देख रहा हूं. आराम क्यूं नहीं करतीं? ज़रा अपनी उम्र का भी तो ख़्याल करें.''

मेरे पति अपनी मां को माई का संबोधन देते हैं. बच्चे भी छुटपन से यही सुनते आये और वे सब भी दादी को दादी न कह माई ही कहते हैं, नीलाभ की बात सुनकर मांजी कह उठीं, ''बचवा, ये विदेशी नियम कानून अपने पास ही रखा करो. बिना मां-बाप के सलाह बात व आशीर्वाद से कहीं शादी-ब्याह होता है? क्या मुझे मालूम नहीं ये विदेशी शादियां ज़्यादा दिन नहीं टिकती हैं, आज शादी हुई तो कल तलाक भी हो जाता है. अख़बार में और टी.वी. पर यही सब तो दिखाते हैं. तुम लोग यह मत सोचो कि माई को कुछ नहीं पता...''

नीलाभ उनकी बात सुनकर दंग रह गया. उसे पता न था माई से ऐसा जवाब सुनने को मिलेगा. वाकई मेरी सास बहुत ज़्यादा तो नहीं पढ़ी-लिखीं लेकिन दुनियादारी की बात हो या फिर किसी तरह की जानकारी, उन्हें बहुत कुछ घर बैठे मालूम होता. एक तो वे नियम से रोज़ाना हिंदी अख़बार पढ़तीं, दूसरे टीवी पर हर तरह की न्यूज़ देखकर अपने आप को हर समाचार या जानकारी से परिपूर्ण रखतीं. पूछिए जो भी सवाल, वे तुरंत उसका जवाब देंगी. मैं ख़ुद सास की इस जागरूकता पर चकित रहती. जबकि मेरा जी इन बीस पन्नों का अख़बार पढ़ने में कभी नहीं लगा. हमेशा यही लगता है ये अख़बार वाले हर दिन एक ही समाचार छापते रहते हैं. चाहे ताज़ा अख़बार हो या एक सप्ताह पुराना, हर पन्ने पर वही घिसी-पिटी घटनाएं.

शादी का मुहुर्त्त नज़दीक आता जा रहा था. नीलाभ बड़े-बुजुर्गों के कहने पर हर काम करता गया. एक बार भी किसी काम के लिए आनाकानी नहीं. तरह-तरह के रस्म रिवाज़ चलते रहे और हम बारात लिये लड़की के द्वार आ पहुंचे. बड़े शौक़ व धूमधाम से शादी का हर काम संपन्न हो रहा था. हम लड़केवाले जितना उत्साहित थे, लड़कीवालों की तरफ़ से भी कोई कोर कसर न थी. हर तरफ जैसे मेहमानों का सैलाब उमड़ आया था. बारात की अगवानी बड़े जोशोखरोश के साथ हुई. नीलाभ के एक नहीं क़रीब बीसियों दोस्त जुटे थे. उनका उत्साह देखते बन रहा था. बारात में नाच-गानों ने कुछ ऐसा समां बांधा कि राह चलते अनजाने भी ठिठक कर खड़े हो गये थे... और आतिशबाजी! उसका तो पूछना ही क्या. लब्बोलुआब यही कि हम ख़ुशी-ख़ुशी लड़की के घर पहुंचे. जयमाल की रस्म हुई और आधे घंटे बाद बाकी की रस्में भी मंडप के नीचे संपन्न होने लगीं. इस बीच बाराती–घराती का खाना-पीना भी चलता रहा.

नीलाभ के ऊपर से मेरी नज़रें नहीं हट रही थीं. जी चाहता था उसे अपने दिलोदिमाग़ में कुछ ऐसा क़ैद करूं कि वो आजीवन मेरे पाश से निकल न सके. पंडितजी के मंत्रोच्चार के साथ शादी के गीत भी गुंजायमान थे लेकिन मेरा दिल दिमाग़ तो यहां से उठकर अट्ठाइस वर्ष पूर्व विचरण करने लगा. सशरीर यहां रहते हुए भी मैं अतीत के गलियारों में क़ैद होती गयी. कुछ पुराने पल बेसब्री से याद आने लगे. वैसे इस क्षण उन्हें याद करना ग़ैर मुनासिब था लेकिन क्या करती, यादों के झोके इस क़दर दस्तक देने लगे कि मैं थोड़ी देर के लिए इस भीड़-भाड़ और शोरगुल के होते हुए भी निर्वाण की स्थिति में पहुंच गयी....

घटना अट्ठाइस वर्ष पूर्व की है. अपनी छोटी सी गृहस्थी में ख़ूब संतुष्ट तो नहीं फिर भी ख़ुश थी. पति की नौकरी अच्छी थी लेकिन इनकम इतनी ज़्यादा भी नही कि हम बहुत ठाट-बाट से रह सकें. शादी के दूसरे वर्ष ही बड़े बेटे का जन्म हुआ. बेटा अभी दो वर्ष का भी नहीं हुआ कि बेटी पधारी. हम पति पत्नी बड़े ख़ुश व निश्चिंत हुए — चलो अपनी गृहस्थी पूरी हुई. नसबंदी वाले ऑपरेशन की बात भी उठी. इस महंगाई के जमाने में दो से ज़्यादा बच्चों की ज़रूरत नहीं. ऑपरेशन के लिए डॉक्टर से बात भी हुई लेकिन उन्हीं दिनों कुछ ऐसी घरेलू समस्या आन पड़ी जिससे मामला कुछ दिन टल गया. यह बात हमने अपने तक ही सीमित रखी थी पर जाने कैसे सास के कानों तक चली गयी. एकदम से भड़क उठीं, ''बहू, तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हुआ है? अभी बच्चे छोटे हैं और दो बच्चे भी ज़्यादा होते हैं क्या? मेरा तो एक ही बेटा है आगे-पीछे कोई नहीं, तो क्या उसके भी गिनती के ही बच्चे हों? मैं भी इसी आसरे में जी रही हूं कि पोता-पोती से घर भरा देखूं. ख़बरदार जो कभी नसबंदी की बात फिर से उठी. बच्चे पालने के लिए मैं हूं न! मेरे ज़िम्मे इतना काम भी नहीं, बच्चों में न उलझी रहूं तो अपना समय बिताना भी कठिन हो जायेगा....''

मैंने दबी जुबान से पति को सुनाया, ''लो हो गयी छुट्टी अपनी प्लानिंग की. माई का मन इन दो बच्चों से नहीं भरा, अभी और की आस लगाये बैठी हैं. बच्चे तो कोई अनगिन पैदा कर दे लेकिन उनकी अच्छी परवरिश भी तो होनी चाहिए वरना ये बच्चे बड़े होकर हमें ही दोष देंगे.

इसलिए ये काम चोरी छिपे ही करना होगा. सबसे अच्छा होगा मैं कुछ दिनों के लिए अपने मायके चली जाऊं और वहीं आपरेशन कराकर हफ्ते भर रह लूंगी. इधर माई को पता भी नहीं चलेगा....''

''हां, यह तरकीब भी ठीक है. यहां रहने पर तो माई को पता चल ही जायेगा. वैसे तो हॉस्पीटल वाले कुछ घंटों में छोड़ देंगे, कोई बहाना चल सकता है लेकिन किसी वजह से दो-चार दिन रुकना पड़ गया तो सब भांडा फूट जायेगा. मायके में होने से किसी बात का डर नहीं. माई की यह आस है कि हमारे ढेरों बच्चे हों और वे उसमें घिरी रहें. और कितना कुछ संभाल ही लेती हैं तुम तो बच्चों की तरफ से थोड़ा निश्चिंत रहती ही हो... आज माई हैं तो सोचो कितना बड़ा सहारा है...''

मां जी बच्चों को देखती ज़रूर थीं पर घर-गृहस्थी के काम कम होते हैं? दो छोटे समवयस्क बच्चों को देखना-सुनना इतना आसान नहीं था. तब हमारी माली अवस्था भी ऐसी न थी कि दाई, नौकर, घोड़ा गाड़ी का सुख उठा सकें. जो करना था एक सीमित आय के भीतर ही. रोज़ की दिनचर्या में ही कभी सास की तबियत ख़राब हो जाती तो कभी बच्चों को सर्दी, खांसी, बुखार. उसमें मेरी तबियत अगर ढीली हुई तो स्थिति संभालना मुश्किल हो जाता. पौने दो वर्ष का बेटा नीरज और चार महीने की बेटी नीली— कभी एक सुरताल में दोनों रोने लगते तो उन्हें चुप कराने के बदले उन्हीं का सुर पकड़ लेती. सच पूछिए कभी-कभार मैं इतना ज़्यादा बौखला जाती कि मन होता कहीं पलायन कर जाऊं. सुबह एक बार बिस्तर छोड़ती तो रात गये ही बिस्तर पर आना नसीब होता. जीवन इस कदर व्यस्ततापूर्ण होगा इसकी आशा मैंने कभी विवाह पूर्व नहीं की थी. यही बच्चे इतनी जल्दी न होकर थोड़े प्लानिंग व अंतराल से होते तो इतनी परेशानी न होती. ख़ैरियत कि मांजी थीं वरना तो अपनी खाट खड़ी ही थी. एक-एक दिन यादगार गुज़र रहा था. इस बीच अम्मा की चिट्ठी आयी दोनों बच्चों को लेकर कुछ महीनों के लिए आ जाओ. मैंने बड़ी आशा से वो चिट्ठी सास को दिखायी पर वह तो देखते ही भड़क गयीं. चार महीने की बच्ची लेकर कहीं नहीं जाना. यहां जितना जतन मैं करती हूं वहां कौन करेगा? फिर तुम्हारी लरकोरी देह.... सावधानी से रहना होगा. बिटिया साल भर की होगी तभी जाना. बात आयी गयी हो गयी. मायके जाने का स्वप्न क्षणभर में धूल धूसरित हो गया. वैसे यहां सास की उक्ति सही नहीं थी. मायके में मुझे बहुत आराम मिलता. अम्मा क्या कोई काम करने देतीं! अच्छा–भला कुछ महीने वहीं पड़ी रहती और अपनी घर-गृहस्थी के चूल्हे-चौके से मुक्ति भी होती.

कुछ ही दिन बीते होंगे तभी मुझे एहसास हुआ. फिर एक नये मेहमान की आने की ख़बर है. पति को खबर दी — मैं क्या डरी, पतिदेव तो सुनते ही बिस्तर पर उछल पड़े. एकदम निरुत्तर थे. मैंने ही उन्हें खरी–खोटी सुनाई, ''जरा भी धैर्य नहीं. थोड़ा सबर से ही काम लेते. इतनी हैरानी–परेशानी में भी आपको अपनी ही सुननी है. लाख समझाया पर आपका क्या, दिक्कत तो मुझे झेलनी होती है. एक तो वैसे ही शारीरिक और मानसिक खटनी थी ऊपर से ये नया बवाल. अब क्या करूं! माहवारी की अनियमितता से इस बार कुछ थाह पता न चली. एक बार जांच तो करवानी ही पड़ेगी...''

वही हुआ जिसका डर था. ये अनचाहे 'गेस्ट' दो महीने के हो चुके थे और कुछेक महीने के बाद तो यह अपना पूरा आकार ग्रहण कर लेगा फिर...? अगर समय से नसबंदी वाला ऑपरेशन हो गया होता तो कोई झंझट ही नहीं था. यह महती काम मिस्टर की ढिलाई और सास के रोकने-टोकने के कारण संपन्न नहीं हुआ. अब देखिए आगे क्या होता है! अगर बेटा जन्मा तो छटी में सोहर गूंजेंगे, लड्डू बटेंगे, भगवान के सामने दीप, अगरबत्ती, फूल-बताशा का भोग चढ़ेगा. गर बेटी हुई तो कई-कई ताने मुझे सुनने पड़ेंगे और भगवान को भी नहीं बक्शा जायेगा. कुछ दिनों तक मैं उधेड़बुन में पड़ी रही. नये शिशु के आगमन से ख़ुश होऊं या इससे छुटकारा पाने के लिए दिलदिमाग को रेडी रखूं. जाने तीसरा बच्चा लड़का है या लड़की. आज की तरह तब अल्ट्रासाउंड आदि तकनीक का आसानी से चलन भी नहीं था कि अग्रिम सूचना मिले. अगर होगा भी तो हमें इस बात की जानकारी नहीं थी, न ही कभी इस मुद्दे पर आस-पड़ोस से चर्चा की. सास को बेटी का जन्म एकदम पसंद नहीं था. बेटी नीली के जन्म के वक़्त जब नर्स ने इसकी सूचना उन्हें दी तो उनका मुंह लटक गया था. तुरंत प्रतिक्रिया हुई, ''जैसे ईश्वर ने पहली बार बेटा दिया क्या दूसरी बार नहीं दे सकता था? इतना पूजा-पाठ करने का क्या फ़ायदा हुआ? नौ महीने कष्ट भी

सहो ऊपर से बेटी का जन्म...''

सचमुच मेरी सास के लिए बेटा-बेटी में काफ़ी अंतर था. बेटे नीरज के लिए जितना साज संभाल व मेहनत करतीं उतना नीली के लिए नहीं. नीली रोती तो परवाह नहीं पर जरा सा नीरज रोया कि चट उसे गोद में उठा लेतीं. आंखों के सामने ऐसा रोजाना घटित होता लेकिन साहस न था इस बात के लिए उन्हें रोकूं-टोकूं. वैसे भी उन दिनों इतना साहस शायद ही किसी पुत्रवधु में होता हो जो अपनी ससुराल में ऊंची आवाज़ में बोल सके. उसमें मेरी सास! उनके रोबदाब का कहना ही क्या. मेरे ससुरजी पुलिस महकमे में काफ़ी ऊंची पोस्ट पर थे. जहां भी नौकरी की हर जगह उनका रुतबा रहा. खांटी ईमानदार थे. कभी किसी के आगे झुके नहीं - इस वजह से बैंक बैलेंस भी जमा नहीं. दूसरी वजह उनकी असमय मृत्यु. एक छोटे अबोध बच्चे के साथ मां जी का विधवा जीवन. आगे की कहानी तो संघर्षमय होगी ही पर लाचारी, मजबूरी, अबला, बेबसी जैसे शब्दों का सहारा न लेते हुए उन्होंने अपने इरादे मज़बूत रखे और एकमात्र बेटे को पढ़ा-लिखा कर योग्य बनाया. ससुरजी की नौकरी में जो रुतबा व ठाट था वैसा बेटे की सर्विस में तो रहा नहीं पर मिज़ाज की तल्ख़ी और वह पुराना रसूख तो कहीं न कहीं गाहे बेगाहे प्रकट होता ही रहा. उनका कहा ही घर में अंत तक चलता रहा और आज भी सब, सुचारु रूप से निभ रहा है. मुझे कोई शिकायत नहीं.

इस तीसरे अजन्मे शिशु को लेकर कुछेक प्रश्न सामने थे. पहला अगर फिर बेटी हुई, दूसरा इतनी जल्दी क्या एक और संतान होनी चाहिए? बेटा होने से सास की ख़ुशी अपरंपार होगी. मेरे ख़ुद के लिए दोनों स्थितियां अच्छी थी. बेटी हो या बेटा कोई फ़र्क नहीं. पति के विचार डांवाडोल स्थिति में थे. उनका कहना था — ''अभी नीरज, नीली दोनों बहुत छोटे हैं, एक संग तीन बच्चों को संभालना भी मुश्किल है. अगर तीसरे बच्चे की इच्छा भी हुई तो दो-चार वर्ष बाद देखा जायेगा, तब तक ये दोनों भी थोड़े होशियार हो जायेंगे. मेरा प्रोमोशन भी अटका हुआ है. अगर यह क्लियर होता है तो कुछ आमदनी भी बढ़ जायेगी. ऐसे ही खींचातानी चल रही है ऊपर से एक और अनचाहे बच्चे की आमद ठीक नहीं. वैसे तुम कहो तो यह बच्चा आ सकता है पर परेशानी तो होगी ही. ख़ैर छोड़ो इतनी भावुकता ठीक नहीं. मैं लेडी डॉक्टर से बात करके दिन तारीख़ तय करता हूं. कुछेक घंटे की बात है, माई को पता नहीं चलेगा...''

सुनकर थोड़ी देर के लिए मेरा मन विचलित हुआ. यह बच्चा भी वैसा ही सुंदर होगा जैसे नीरज व नीली हैं. जैसे ये बड़े हो रहे हैं वैसे यह भी पलेगा. जब पेट में आ ही गया तो गिराना क्यों. ग़लती हमारी है जो हमने सावधानी नहीं बरती. बच्चा तो बेकसूर है... लेकिन तुरंत फिर यह भी ख़्याल आया, पति का कहना ठीक है. बेचारे सुबह से शाम तक खटते हैं तब जाकर महीने भर बाद पगार मिलती है. अगर उनकी परेशानियों में साथ नहीं दूंगी तो क्या फ़ायदा. उनका सोचना सबके हित में है. दो बच्चे तो हैं ही तीसरे की फिर कभी सोचेंगे. बस्स... सासू मां को पता नहीं चलना चाहिए. वक़्त आने पर कोई तिकड़म सोच ही लेंगे...

सब कुछ प्लान होने के बाद भी पंद्रह बीस दिन हम निकल नहीं पाये. कभी माई की तबियत ख़राब तो कभी बच्चों की तबियत बिगड़ी. आख़िरकार दिन तारीख़ तय हुआ. अब इससे ज़्यादा ढिलाई ठीक नहीं. चाहे जैसे भी हो इस काम को अंजाम देना ही होगा. सुबह ग्यारह बजे नर्सिंग होम पहुंचना था. घर का सारा कामधाम मैंने सलटा दिया था. दोनों बच्चों को सास के ऊपर छोड़कर जाना था. उन्हें नहला–धुला कर खिलाया-पिलाया तथा आगे दूध-पानी की व्यवस्था कर दी ताकि सासू मां को ज़्यादा भाग-दौड़ न करना पड़े. तीन-चार घंटे की मोहलत लेकर हम निकलने की तैयारी करने लगे. एक छोटे से बैग में ज़रूरी सामान रखा. कमरे से निकलकर आंगन पार करना था फिर बरामदे से होकर बाहर. ऑटो स्टैंड क़रीब था जहां से हमें सवारी मिल जाती.

अभी कमरे से निकली ही थी कि जाने कहां से कैसे तेज हवाएं चलने लगीं. थोड़ी देर पहले तक तो आसमान एकदम साफ़ सुथरा था फिर यह मौसम कैसे बिगड़ने लगा? देखते ही देखते बादल घिर आये और गरज के साथ बूंदाबांदी शुरू हो गयी. तेज़ हवाओं से आसपास के पेड़ों के पत्ते भी टूट कर जहां-तहां बिखर गये. इस अप्रत्याशित घटना से हम सब घबरा गये. दोनों बच्चे जो अब तक मूक दर्शनार्थी बने हमें जाते देख रहे थे, इस अचानक बिगड़े हालात से घबराकर उन्होंने रोना शुरू कर दिया. आगे बढ़ चुके पति को मैंने आवाज़ लगायी तथा आज न जाने का

इशारा किया. यह काम यदि कल के लिए टाल दिया जाये तो? सास ने भी मना किया लेकिन पति ने आगे बढ़ने का इशारा किया यह कहते हुए कि आज जाना बहुत ज़रूरी है. यह बरसात बेमौसमी है, जितनी तेज़ी से उभरी है उतनी ही तेज़ी से बैठ भी जायेगी. उनका कहना किसी हद तक ठीक भी था. इसे बंगाल में काल बैसाखी कहते हैं. आसपास नदी समुद्र में निम्न दाब बना नहीं कि आंधी तूफ़ान आ धमकता है.

ख़ैर... मुझे तो पति की बात माननी ही थी. बच्चों को दिलासा दिया. एक बार फिर उनके हाथों में बिस्कुट थमाया तथा ख़ुद एक हाथ में बैग तथा दूसरे में छाता लेकर आगे बढ़ी. पूरा आंगन गीला हो गया था. कहीं-कहीं तो पानी भी जम गया. दूसरा कोई रास्ता या कॉरीडोर भी नहीं था जहां से बचते हुए बाहर निकल सकें. अभी बीच आंगन पहुंची ही थी कि पीछे से सासू मां ने आवाज़ दी, ''ये दो बच्चे मुझसे नहीं संभलेंगे, नीली को मैं रख लूंगी लेकिन नीरज को तुम ले जाओ. बहुत चंचल है. दिनभर मैं उसके पीछे नहीं दौड़ सकती. तीन-चार घंटे का बोल कर जा रही हो, और ज़्यादा भी हो सकता है. या तो मत जाओ या फिर बेटे को संग लेती जाओ.... इस बारिश में कहीं भीगभाग गया तो तबियत ख़राब हो जायेगी.''

थोड़ी देर के लिए थमना पड़ा. मैं अच्छी तरह समझ रही थी ये सासू मां का आक्रोश था. मेरी उपस्थिति में वे दोनों बच्चों को बख़ूबी संभाल लेती थीं लेकिन आज मेरे घूमने-फिरने के नाम पर ग़ुस्सा हो रही थीं. बहू घर-गृहस्थी छोड़ बाहर जाये यह उन्हें जल्दी पसंद नहीं आता, हां... सपरिवार निकले तो ठीक. मैंने सोचा नीरज को साथ ले ही लूं. सचमुच बड़ा चुल्ली लड़का है. नीली तो चुपचाप पड़ी रहेगी पर नीरज के पीछे खटना पड़ता है. अगर देर सबेर भी हुआ तो सासू मां को समस्या नहीं होगी, वरना तो घर लौट कर डांट सुननी पड़ेगी. नीरज को लेने के लिए जैसे ही पलटी और आगे बढ़ी, जाने कैसे मेरा पैर फिसला और मैं अपने को संभालते-संभालते भी धड़ाम से चारों खाने चित्त हो गयी.

थोड़ी देर तक मैं संज्ञाशून्य वाली स्थिति में पड़ी रही. समझ नहीं पा रही थी आख़िर हुआ क्या लेकिन कुछेक क्षणों बाद ही बायें हाथ की कलाई में ज़ोरों का दर्द शुरू हुआ. इस बीच मैंने सास के चिल्लाने की आवाज़ सुनी. बेचारे पति जो बाहर निकल कर मेरा इंतज़ार कर रहे थे इस चिल्ला-चिल्ली पर भागते हुए अंदर आये और मुझे इस पोज़ीशन में देख भौंचक्के रह गये. उन्होंने मेरा हाथ थाम उठाना चाहा लेकिन कलाई तो झूल गयी थी. मारे दर्द के मैं रो रही थी. उन्होंने जैसे-तैसे मुझे उठाया और कमरे तक ले आये. तत्काल एम्बुलेंस को ख़बर दी गयी और मैं हास्पीटल पहुंची. वहां एक्सरे हुआ और पता चला कलाई की हड्डी टूट गयी है. पति को शक हुआ कहीं ऐसा तो नहीं कि इस गिरनेवाली घटना में बच्चा भी ख़राब हो गया हो. लगे हाथ दूसरा एक्सरे पेट का भी करा लिया जाये. वैसे एबॉर्शन हुआ होता तो निश्चित तौर पर ब्लीडिंग होती या पेट में असह्य पीड़ा. परंतु ऐसे लक्षण तो दिखे नहीं. इस दौरान उस लेडी डॉक्टर से भी फ़ोन पर बात हुई जिन्हें इस काम का ज़िम्मा दिया गया था. उन्होंने सारी घटना सुनने के बाद मुस्कुराते हुए जवाब दिया था — ''सिन्हा जी इस तीसरे बच्चे को आपके घर में आना है इसलिए सिर्फ़ कलाई पर ही चोट लगी बाकी सब ठीक रहा. आप अपनी पत्नी को लेकर मेरे पास आइए मैं सब चेक कर लूंगी...''

सबसे पहले प्लास्टर का काम हुआ फिर वहां से लेडी डॉक्टर के पास पहुंची. उन्होंने मेरी जांच की तथा सब ठीक बताया तथा यह भी कहा — ''जब तक प्लास्टर नहीं खुलता तब तक एबॉर्शन की बात सोचना भी नहीं है. ये प्लास्टर कम से कम छह हफ़्ते या आठ हफ़्ते तक रहेगा और इस दौरान बच्चे का ग्रोथ होता रहेगा. वैसी हालत में मैं तो क्या कोई भी डॉक्टर यह काम नहीं कर सकता है. एक तो आप वैसे ही लेट आये थे. ख़ैर ... इस प्रोग्राम को यहीं स्थगित कीजिए और ख़ुशी मन से यही सोचें कि ईश्वर ने इस पाप को करने से हम सबको बचा लिया. वरना आपकी पत्नी गिरती क्यों और आघात सिर्फ़ कलाई पर ही क्यों हुआ...?''

सच में, लौटते वक़्त एक परम शांति का अनुभव हो रहा था. ऐसी चित्त की स्थिरता तो महीनों बाद नसीब हुई थी. अचानक उस अजन्मे बच्चे के प्रति घोर श्रद्धा व ममता उमड़ आयी. ये क्या करने जा रही थी मैं? एक मां होकर इतनी बड़ी भूल. ईश्वर ने बड़े सही वक़्त पर मुझे इस पाप को करने से रोका तथा कलाई पर चोट पहुंचा कर शिक्षा भी दी. मैं नतमस्तक थी. इतने दिनों की पूजा आराधना व्यर्थ न गयी. ज़रूर पेट में पलनेवाला बच्चा यशस्वी और ख़ानदान का नाम रौशन करनेवाला होगा

वरना क्या कारण था कि इसे बचाने के लिए ईश्वर को इतनी पैरवी करनी पड़ी. सासू मां का चेहरा याद आ गया. उन्होंने अगर मुझे अचानक रोक कर नीरज को ले जाने के लिए न कहा होता तो क्या पता मैं आगे बढ़ जाती और यह बच्चा मेरे हाथ से निकल जाता. ओह...! ईश्वर ने स्वयं प्रकट न होकर सास को अपना प्रतिनिधि चुना और ऐन मौक़े पर अनिष्ट होने से बचा लिया. ईश्वर के साथ-साथ मैं माई की भी आभारी थी. मेरी आंखों से टप-टप आंसू गिर रहे थे. मेरी मनोव्यथा से पति अनजान थे. जाने उनके दिमाग़ में कौन सी रील चल रही थी. हम दोनों चुपचाप सड़क की दूरी नाप रहे थे. हां, एक बार मुझे रोते देख उन्होंने ज़रूर पूछा — ''क्या कलाई में अभी भी दर्द है?'' मैंने 'ना' कहा. दर्द और तकलीफ़ तो डॉक्टर की बात सुनकर ख़त्म हो गयी थी.

घर लौटी तो देखा सास हैरान–परेशान घबरायी हुई थीं. बड़े प्यार से मेरा हाथ थामा और कमरे तक ले आयीं फिर आदेश दिया, ''चुपचाप आराम करो. जब तक हाथ का प्लास्टर कट नहीं जाता... और यह कमबख़्त ख़राब मौसम भी जैसे तुम्हें गिराने के लिए ही उपजा था. तुम घर से बाहर क्या निकलीं पांच मिनट में सब ठीक हो गया और धूप निकल आयी. ईश्वर भी जाने क्या-क्या लीलाएं रचता है. उसकी थाह पाना हम मनुष्यों के वश में नहीं...''

दोनों बच्चे मेरे पास आये. नीली क्या समझती पर नीरज आंखें फाड़ कभी मेरा मुंह देखता, कभी प्लास्टर को हाथ लगाता. बच्चों को देख मुझे रुलाई आ गयी. ये दोनों चाहे जितना परेशान करें हैं तो मेरे ही अंश, मेरे कलेजे के टुकड़े. क्या इनके बिना मैं एक पल भी रह सकती हूं. ये तीसरा बच्चा भी तो ऐसा ही होगा. इन्हीं की तरह सुंदर, सरल, निष्पाप, प्रांजल. जाने–अनजाने जो भूल हुई उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूं ईश्वर.

तभी पति की आवाज़ आयी, ''सच पूछो तो मैं भी इस पाप से कतरा रहा था. पिछले दो महीने से मैं स्वयं दिग्भ्रमित और अकुलाया हुआ था. सही ग़लत का फ़ैसला नहीं ले पा रहा था. इसी उधेड़बुन में तुम्हारी कुंडली एक पहुंचे हुए ज्योतिषी को दिखलायी थी. उनका कहना था — आनेवाली संतान पुत्र है. उन्हें सारी बात मैंने खुल कर नहीं बतायी थी. ख़ैर ... बात आयी गयी हो गयी लेकिन मन में कहीं न कहीं ज्योतिषी की बात तो प्ले कर ही रही थी. मैंने तुम्हें बताया भी था लेकिन तुमने यह कहते हुए मेरी बात को नकार दिया कि अगर बेटी हुई तो क्या करेंगे. माई वैसे ही एक बेटी से नाख़ुश हैं, फिर बेटा होगा इसकी क्या गारंटी. तुम्हारी बात सुनकर मैंने भी सोचा चलो.... बाद में फिर देखेंगे. लेकिन आज की इस अप्रत्याशित घटना ने मुझे फिर उस ज्योतिषी की बात याद दिला दी. खैर... बेटा हो या बेटी मुझे उससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता. अब इस तीसरे का स्वागत हम दुगुने उत्साह से करेंगे. अगर यह ईश्वर का चमत्कार है तो आगे की ख़ुशहाली भी उसके जिम्मे ही छोड़ते हैं. जो होगा अच्छा ही होगा. जाने कैसे इस पाप के रास्ते हम चल पड़े थे. इस दु:स्वप्न को जितना जल्दी भुला दें उतना ही श्रेयस्कर.''

सास को कुछ ज़्यादा ही खटना पड़ रहा था बावजूद इसके वह धीर-शांत व ख़ुश दिखतीं. इस बीच उन्हें पता चल चुका था कि मेरे पांव फिर से भारी हैं. उनकी देवी-देवताओं से रोजाना प्रार्थना ज़ारी थी कि इस बार बेटा ही चाहिए. मेरे कमरे में रामायण रख दी गयी ताकि खाली वक़्त में उसका परायण कर सकूं. राम सीता रावण की कहानी कौन नहीं जानता. जो अनपढ़ हैं उन्हें भी सब कथा मालूम. मेरे सिरहाने रामायण होती तो तकिये के नीचे फ़िल्मी मैगज़ीन. जब भी रामायण उठाती उसके अंदर कभी 'माधुरी', कभी 'सुषमा' तो कभी 'फ़िल्मफेयर' होती. सास की चौकन्नी निग़ाहें भी उस धार्मिक ग्रंथ को भेद किसी हीरो हीरोइन तक नहीं पहुंच पायीं. उन्हें तसल्ली थी बहू इतने दिनों से तुलसीदास की चौपाइयां बांच रही है - बेटा तो पक्का होगा ही. इधर बहू को दूसरा ही आनंद मिलता. इतना स्थिर मन से फ़िल्मी ख़बरें पढ़ने को मिल रही थीं. किस हीरो हीरोइन का आपस में टांका भिड़ा, किसकी कौन सी फ़िल्म कब रिलीज हो रही है... तो कौन किससे ज़्यादा सुंदर है?

राम-राम करते दिन बीते और ठीक समय से 'नीलाभ' का जन्म हुआ. पुत्र जन्म की ख़ुशी, सास और इनकी देखते ही बन रही थी. भले हम आधुनिकता की रौ में बहकर यह कहते फिरें कि बेटा-बेटी में कोई फ़र्क नहीं पर आज की अंग्रेज़ी बोलनेवाली पीढ़ी की भी पहली पसंद 'पुत्र' ही होगा और यह तो तीन दशक पूर्व की बात थी. 'पुत्रजन्म' अपने घर-परिवार को ख़ुश तो करता ही है. पास-पड़ोस व पूरा ख़ानदान भी आह्लादित हो उठता है. यही कटु सत्य है.

नीलाभ बहुत सुंदर था. जितने दिन मैं हॉस्पीटल में रही उसके चर्चे होते रहे. कोई कृष्ण से तुलना करता तो कोई राजकुमार कहता और मैंने तो उसका नाम तुरंत सोच लिया था 'नीलाभ'. जैसे पूरे आकाश की नीली आभा या समुद्र की नीली गहराई मेरे आंचल में समा गयी हो. कितनी खुश थी मैं! बहुत ख़ुश. नीरज अभी छोटा ही था पर दोनों भाई-बहनों के सामने अपने आप को वह सयाना समझने लगा था. नीली एक वर्ष की हो चुकी थी. नये सिरे से एक नवजात बच्चे की सेवा टहल शुरू हो गयी.

भगवान जब देने पर आता है तो ख़ूब देता है. नीलाभ का जन्म क्या हुआ इनका प्रोमोशन जो कई महीनों से अधर में लटका था वो मिला. तनख़्वाह बढ़ी, कंपनी की तरफ़ से सरकारी मकान साथ ही हम सबकी तरक्की. इसके बाद तो सब कुछ अच्छा होता गया. शायद यह सब नीलाभ के संग ही जुड़ा हुआ था. तीनों बच्चे पढ़ने-लिखने में बहुत तेज़ निकले. हर कक्षा में अव्वल आते गये और देखते-देखते नीरज ने जहां डॉक्टरी की डिग्री ली वहीं नीली व नीलाभ ने इंज़ीनियर बनकर हमारा सिर ऊंचा किया. हम बड़े सौभाग्यशाली थे जो अभी तक मां जी का साया हमारे ऊपर बना हुआ था. अगर वे न होतीं तो इतनी आसानी से जीवन की नैया यहां तक नहीं पहुंचती. यह सब मां जी के पुण्य प्रताप का ही फल था.

हमारे सभी सपने पूरे हो चुके थे जो हमने कभी शादी के बाद देखे थे — अपना घर हो, अपनी गाड़ी हो, दुनिया का तमाम सुख हम हासिल करें. बच्चों का नाम हो, सब कुछ तो नसीब हुआ और भरपूर मिला. अब तो बच्चे बड़े हो गये बहुत मदद करते हैं पर जिस घर को ख़रीदने की साध वर्षों से थी वह जाने कैसे नीलाभ को पता चला और आनन-फानन में बिना सोचे विचारे रुपयों की ढेरी लगा दी. उस घर को हम लेते ज़रूर पर जाने कब संभव होता पर वक़्त से पहले नीलाभ ने इसे हमारे हवाले कर दिया. जहां कहीं भी ख़र्चे की बात हो, ज़मीन ख़रीदनी है, शेयर का काम हर जगह नीलाभ... ख़ैर, अतीत की जिस बात को मन में दबाये बैठी थी जाने आज कैसे हरी हो गयी.

तभी 'मम्मी-मम्मी' की आवाज़ ते तंद्रा भंग हुई. देखा नीरज व नीली मेरे आसपास खड़े उलाहना दे रहे थे, ''मम्मी इतना सीरियस होकर क्यों बैठी हो? यहां कोई सी.आई.डी. सीरियल की शूटिंग नहीं चल रही न ही कोई बम ब्लास्ट या मर्डर होने वाला है. हम तबसे फ़ोटो खींच रहे हैं और सबमें तुम्हारा चेहरा सपाट दिख रहा है. अरे... चहेते लाडले बेटे की शादी है, चेहरा दमकना चाहिए. तुम्हारी शक्ल देखकर तो लोग यही सोचेंगे कि नीलाभ की बहू तुम्हें एकदम पसंद नहीं... या फिर कहीं से भगा कर लड़की लाया हो!''

उनकी बात सुन मैं चेत गयी. नहीं भई! ऐसी कोई बात नहीं, थोड़ा थक गयी थी. एक कप गर्मागर्म कॉफी मिलती तो फ्रेश हो जाती. ठंड भी तो अधिक है. मेरे कहने की देरी थी कि बेयरा गर्म पेय लिये हाज़िर था. जैसे-जैसे गर्म कॉफी गले से नीचे उतरी वैसे-वैसे मैं वर्तमान के धरातल पर उतरती गयी. जीवन में हर किसी के साथ अजीबो-ग़रीब घटनाएं घटती होंगी, उन्हीं में कुछ बातें साधारण तो कुछ असाधारण होती होंगी पर मेरे साथ जो हुआ वह तो शायद सबसे चमत्कारिक व निराला ही था.

अट्ठाइस वर्ष पहले की वह अनमोल घड़ी जो हमारी संतान को हमारे इतना समीप लाकर समय की अनंत राशि में विलीन हो गयी, अविस्मरणीय है. मैं उसकी कृतज्ञ हूं तथा श्रद्धा से घुटने टेकती हूं....

हाजीनगर, २४ परगना उत्तर
पं. बंगाल-७४३१३५.
मो. : ९८७४११५८८३

लघुकथा

पत्र-प्रतिपत्र

✍ प्रेम बहादुर कुलश्रेष्ठ विपिन

एक इंटर कॉलेज के गणित अध्यापक दिनेश वर्मा ने विज्ञान अध्यापिका मीना वर्मा को उसके प्रेम में विह्वल होकर प्रेम पत्र लिखा. जबसे मैंने तुम्हें देखा है, मेरी रातों की नींद और दिल का चैन खो गया है. जिस दिन मैं तुम्हें नहीं देख पाता हूं, मेरे जीवन में माइनस ही माइनस हो जाता है.''

अब विज्ञान अध्यापिका ने गणित अध्यापक को उसके प्रेम पत्र का जबाव अपनी वैज्ञानिक भाषा में दिया, ''जबसे मैंने तुम्हारा प्रेम पत्र पढ़ा है. तबसे ग़ुस्से के कारण न तो ऑक्सीजन अंदर जाती है न ही कार्बन डाई ऑक्साइड बाहर आती है. अर्थात सांस लेना ही दूभर हो गया है.

गांव व पो. गंगीरी,
जि. अलीगढ़-२०२१३४

आमने-सामने

'लिखना एक नशा है जो जल्दी छूटता नहीं !'

✍ माला वर्मा

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव और दिलीप भाटिया से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है माला वर्मा की आत्मरचना.

जन्म बिहार के भोजपुर जिले के मुख्यालय आरा में. पांच बहनों में सबसे छोटी तथा मेरे बाद दो भाई. अपने अम्मा पापा के मुख से तो नहीं पर कुछ लोगों ने यह ज़रूर कहा था — लगातार पांचवी बेटी हुई तो क्या हुआ, अपने पीठ पीछे दो भाइयों को तो लायी. उन दिनों के पुरुष प्रधान समाज में ये दोनों भाई धूप में छांव की तरह आये और समाज ने इसका क्रेडिट मुझे ही दिया. वैसे हमारे डॉक्टर पिता रमनी बाबू ने जो आरा के एक मशहूर नेत्र चिकित्सक थे, हम भाई-बहनों में कभी भी कोई भेदभाव नहीं किया और पढ़ने-लिखने की सारी बुनियादी सुविधाओं का सबको भरपूर मौक़ा दिया. मेरी सबसे बड़ी बहन आरती दी ने शादी के बाद एम. ए. किया और कई वर्षों तक झरिया के एक महिला कॉलेज में पॉलिटिकल साइंस की हेड ऑफ डिपार्टमेन्ट रहीं. उसके बाद वाली पूजा दी ने ऑनर्स के साथ ग्रेजुएशन तथा शादी के बाद बी.एड. व एल.एल.बी. की पढ़ाई तथा नौकरी भी की पर ये दोनों बहनें पूरी तरह प्रोफेशनल नहीं हो सकीं. इसके बाद आराधना दी व चौथे नंबर की प्रतिमा दी ने ग्रेजुएशन किया.

मेरे पापा को इस बात का बड़ा ही शौक़ था कि उनकी बेटियां डॉक्टर बनें पर अफ़सोस, मुझसे बड़ी चारों बहनों ने आर्ट्स लेकर पढ़ा और अंत में विज्ञान की डोरी मुझे थमायी गयी ताकि मैं डॉक्टर बन पापा के सपने को पूरा कर सकूं. मुझे ट्यूशन देने के लिए तब चार-पांच टीचर बहाल किये गये ताकि विज्ञान में मेरी रुचि आगे भी बनी रहे और मैं डॉक्टरी की पढ़ाई कर सकूं. पर मैंने उनकी सोच पर गुड़-गोबर फेरा और साइंस की छात्रा होते हुए भी अपना दिमाग़ कहानी, कविताओं, गीत संगीत की तरफ़ लगाये रखा. जिसका परिणाम सुखद तो हो नहीं सकता था. एकाध बार पी.एम.टी. की परीक्षा भी दी और खाली हाथ लौटी. हां, डोनेशन के बलबूते किसी अन्य प्रांत के मेडिकल कॉलेज में एडमीशन हो सकता था. पापा का ख़ूब मन था, चाहे जितने रुपये ख़र्च हो मैं डॉक्टरी पढ़ लूं पर ऐन मौक़े पर मेरे दादाजी देवदूत बन कर प्रकट हुए तथा पापा को डांटा,

'इतनी दूर बेटी को भेजोगे? गर तबियत ही ख़राब हुई तो उसकी चिट्ठी भी जल्दी नहीं मिलेगी और कोई ज़रूरत नहीं लड़की को दूसरे प्रांत में भेजकर डॉक्टर-वॉक्टर बनाने की, जो पढ़ाई करनी है यहीं रह कर पढ़े.'

ख़ैर, जो हुआ मेरे हक़ में अच्छा हुआ. दिमाग़ इतना तेज़ न था कि मेडिकल की कठिन पढ़ाई झेल पाती. साहित्य के साथ-साथ गीत, संगीत का पक्ष भी इतना हावी रहता कि कई बार महत्वपूर्ण परीक्षाएं देते वक़्त कहीं लाउडस्पीकर पर पुराने मनलायक गीत सुनती तो लिखना छोड़ पहले पूरा गाना आत्मसात करती, फिर कलम चलाती.

हमारे घर में सबकी रुचि के अनुसार पत्रिकाएं आतीं जिनमें बच्चों के नाम पर, बालक, पराग, चंदा मामा, नंदन थे तो बड़ों के लिए धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सरिता, मनोरमा, सुषमा, नवनीत, कादंबिनी, रीडर डाइजेस्ट, कल्याण आदि थे. इनके अलावा घर में 'शिवानी' की हर क़िताब मौजूद थी. उनकी नयी पुस्तक बाज़ार में आयी नहीं कि तुरंत ख़रीदी जाती. हम सबके साथ-साथ अम्मा को भी पढ़ने का बहुत शौक़ था और शिवानी तो उनकी सबसे प्रिय लेखिका थीं. हमारे पूरे ख़ानदान को शिवानी पसंद थीं. मैं कहती — जैसे हर परिवार का अपना एक फ़ैमिली डॉक्टर होता है वैसे शिवानी जी हमारी 'फ़ैमिली राइटर' हैं. हमारी अम्मा सिर्फ़ मिडिल पास थीं पर दिमाग़ चाचा चौधरी की तरह तेज़. कहीं कोई जोड़-घटाव, हिसाब बैठाना हो अम्मा तुरंत देखतीं. बड़ी बहनों को उन्होंने पढ़ाया भी था, ख़ासकर गणित व हिंदी. अम्मा उर्दू की भी अच्छी जानकार थीं. हमारे आग्रह पर जब उर्दू पढ़कर सुनातीं तब वे बिहारी न लग मुस्लिम महिला सदृश दिखतीं. अम्मा देखने में बहुत सुंदर थीं. जब शादी करके अपने ससुराल (शाहपुर) आयीं तो शोर मच गया था कि इतनी सुंदर कनिया (बहू) आज तक पूरे गांव में नहीं आयी थी. कुछ लोगों की यह भी प्रतिक्रिया थी — इन्हें बलिया से नहीं बल्कि काश्मीर से लाया गया है. काश! उनकी सुंदरता का थोड़ा बहुत अंश मुझे भी मिलता. ख़ैर....

शिवानी जी के अलावा प्रेमचंद, गुलशन नंदा, कुशवाहा कांत, कर्नल रंजीत, इब्ने सफी, प्यारे लाल आवारा आदि कई लेखकों के उपन्यास हमारे घर में बंधे थे. अभी सोचकर अजीब लगता है कि इतनी सारी पत्रिकाएं व पुस्तकें हम कैसे पढ़ लेते थे. जबकि साथ-साथ अपने स्कूल कॉलेज की पढ़ाई भी होती थी ! वैसे एक रोचक बात का उल्लेख यहां करती चलूं. हमारे घर में सबको टॉयलेट में क़िताब पढ़ने की बुरी लत थी. सिर्फ़ एक अम्मा को छोड़कर. इस मामले में पापा दो क़दम आगे थे. उन्होंने टॉयलेट रूम में क़िताब रखने का रैक ही बनवा दिया था. जहां सब तरह की रचनाएं पड़ी होतीं, जो मर्जी पढ़िए और रख दीजिए. इतनी सारी पत्रिकाओं व पुस्तकों का हमारे घर में आना, अपने आप में अजूबा ही था. सचमुच मेरे पापा बहुत उदार दिलवाले इंसान थे. इतनी बड़ी घर-गृहस्थी का बोझ उठाने के बाद भी अपने बच्चों की रुचि का मान रखा. पढ़ने के साथ-साथ घर में गीत-संगीत का भी माहौल था.

शादी के पहले अपने स्कूली जीवन में मैंने काफ़ी कुछ लिखा था. तब तीन आने की लाइनदार कॉपियां चलती थीं और मैंने दो-चार तो ज़रूर भरी थीं. उनमें छोटी-बड़ी कहानियां, कविताएं आदि थीं, पर अफ़सोस मैंने उन्हें सहेजा नहीं और वे काल-कवलित हो गयीं. आज जब कि मेरी कई क़िताबें विभिन्न विधाओं में छप चुकी हैं, उन तीन आनेवाली कॉपियों की कसक नहीं जाती.

लेखन की आरंभिक शुरुआत 'संपादक के नाम पत्र' से हुई. पत्रिकाओं की कमी तो थी नहीं, पोस्टकार्ड उठाया और चट प्रतिक्रिया भेद दी. कई पत्र छपे और उत्साह बढ़ता गया. हालत यह हो गयी कि हर पत्रिका में माला सिन्हा (तब मेरा सरनेम यही था) मौजूद होती. यह सिलसिला शादी के बाद भी बना रहा. अधिकतम छपी चिट्ठियां महफूज हैं और पुराने दिनों की याद दिलाती हैं. पत्र लेखन का काम तो आज की तारीख़ तक बरकरार है और जीवन तक चलेगा. जब तक आंख, दिमाग़ व कलम साथ देता रहे. इन पत्रों की संख्या सैकड़ों में पहुंच गयी है. कभी मन होता है इन्हें पुस्तक रूप में छपवाती. लेकिन कतार में चार-पांच पांडुलिपियां इंतज़ार कर रही हैं.

प्रख्यात कथाकार श्री मिथिलेश्वर जी आरा के पुराने वाशिंदे हैं और हमारे घर के क़रीब ही रहते हैं. पापा से पुरानी जान–पहचान थी. हमारा पूरा परिवार उनके लेखन से परिचित था और कायल भी. उनकी सबसे उत्कृष्ट रचना थी 'बाबूजी'. उनकी लेखनी पर आरा क्या पूरे बिहार को नाज़ है. वैसे भी हिंदी साहित्य जगत में ऐसा कौन है जो उनके नाम से परिचित नहीं. और उन्हीं की देखरेख में

अपनी कलम चलती रही. मेरी पहली कविता 'बचपन' मुजफ्फरपुर से निकलने वाली पत्रिका 'प्रणेता' में छपी. जिसका अता–पता श्री मिथिलेश्वर जी ने ही बताया था. मैं उन्हें अपना साहित्यिक गुरू मानती हूं. अब तक पत्र-पत्रिकाओं में सिर्फ़ चिट्ठियां ही छपती थीं पर इस एक कविता ने मेरा उत्साह बढ़ा दिया. मैं कविता-कहानी लिख सकती हूं और वह छप भी सकती है, यह भरोसा मज़बूती दे गया. लेखन को कुछ और विस्तार मिलता तब तक मेरी शादी की बारी आ गयी और ग्रेजुएशन होते मैंने ससुराल की राह पकड़ी.

डॉक्टर तो न बन सकी पर एक डॉक्टर की पत्नी ज़रूर बन गयी. कोलकाता के एक उपनगरीय शहर हाज़ीनगर के एक जूट मिल में मेरे पति डॉक्टर हैं. यहां आने से पहले मुझे अपने ससुराल में एकाध महीने रहना पड़ा जो भोजपुर का ही एक गांव उमरॉवगंज था. अटपटा ज़रूर लगा क्योंकि ऐसे माहौल से मैं कभी वाकिफ़ न थी. शहर की पली-बढ़ी आधुनिका को एकदम से एक खांटी गांव का दर्शन करा देना! पर मेरे सास-ससुर, ननद-देवर सबके सब बहुत ही अच्छे स्वभाव के थे. मैं शहर की हूं और एक बड़े घर की बेटी, इसका मान करके उन्होंने मेरा पग-पग पर सहयोग दिया. प्रत्युत्तर में मैंने भी वैसा ही रिटर्न किया जो उन्हें पसंद था. ससुराल में इस बात की आज भी तारीफ़ होती है कि मैंने शहरी होने के बावजूद इस घर, इस गांव को अपना समझा और जितने भी दिन रही सबसे स्नेह आदर भाव बनाये रखा. यह तो बाद में पता चला कि जाने-अनजाने मेरी कई कहानियों का आधार वह गांव बन गया था. पर्देदारी थी पर इतनी भी नहीं कि उससे मुझे उलझन हो. जब तब ग्रामीण महिलाओं से बातचीत होती, उनका दुख-दर्द सुनती और मन ही मन उन्हें सहेज विवेचना करती. कालांतर में उन सभी चरित्रों का मैंने फिर से मनन किया और बारी-बारी सबको कहानी का जामा पहनाती गयी. अपनी ख़ुद की लिखी कहानियों पर रोती और उन पात्रों को याद करती जाती जिन्होंने मुझे अपनी संघर्षमय जीवनी का ब्यौरा देकर मेरी आधुनिक सोच पर लगाम कस दी थी. जीवन में दुख, तकलीफ़, अभाव क्या होता है इसकी कल्पना मैंने पहले कभी न की थी. ससुराल का ग्रामीण परिवेश, वहां के सरल सीधे लोग, उनका सद्व्यवहार, ईमानदार आचार-विचार, मेरे

प्रति सबका स्नेह, सद्भाव — यह सब मेरे जीवन में एक अमिट याद बन कर रह गये और मुझे इस बात का सुखद एहसास है कि मैंने अपनी कहानियों में उन सबका समावेश करके दिल ही दिल में उनके प्रति कृतज्ञता व श्रद्धा ज्ञापन किया.

ससुराल में मेरा समय कैसे व्यतीत होगा, कुछ पढ़ने की सामग्री मिलेगी भी या नहीं...यह सोचकर मेरे पापा ने धर्मयुग के क़रीब छत्तीस अंकों को बाइंड करवा कर मेरे संग रवाना किया था ताकि मैं वहां खाली वक़्त में अपनी रुचि का साहित्य पढ़ सकूं. धर्मयुग के अलावा, फ़िल्मी पत्रिका सुषमा की भी बीस प्रतियां थीं. ससुराल के लोग आश्चर्य में थे कि ऐसा तो उन्होंने कभी नहीं सुना था. यह सब देख मेरे ससुरजी ने रोज़ाना एक हिंदी अख़बार मंगाना शुरू किया जो वहां से कई किलोमीटर दूर बिहिया स्टेशन से मंगाया जाता था. सचमुच मेरे सास-ससुर देवता तुल्य थे. उन्होंने अपने जीवन के अंतिम कई वर्ष हमारे साथ हाज़ीनगर में गुज़ारे और मैंने मन प्राण से उनकी सेवा की.

ख़ैर, एकाध महीने के प्रवास के बाद मैं अपने पति के साथ हाज़ीनगर चली आयी. यहां एक दूसरा ही माहौल मिला. भागीरथी नदी के किनारे बाग-बाग़ीचों से सुसज्जित

कैंपस और उसी के बीच अवस्थित अपना ऑफ़िसर्स क्वार्टर. १९७६ से लेकर अब तक उसी कैंपस, उसी क्वार्टर में रहती आ रही हूं. कैंपस के बाहर का इलाका चटकलिया कहलाता है जबकि कैंपस के भीतर का रौबदाब अलग है और हो भी क्यों न, यहां कभी अंग्रेज़ों ने मिल संभाली थी, भले इसके असली मालिक इंदौरवासी हुकुमचंद सेठ थे. बाद में कई हाथों से होता हुआ अब बाजोरिया सेठ के हाथ में यह मिल है. यहां एक बात का उल्लेख करती चलूं. इसी मिल में मेरे ससुरजी ने क़रीब सैंतीस वर्षों तक काम किया था और ठीक उसी वर्ष रिटायर होकर गांव चले गये जिस वर्ष हमारी शादी हुई. यह संयोग ही था. मेरे पति का जन्म इसी शहर में हुआ था और पढ़ाई-लिखाई यहीं करके कोलकाता से मेडिकल की पढ़ाई की. इस हुकुमचंद जूट मिल को एशिया की सबसे बड़ी जूट मिल समझा जाता है.

यहां सब कुछ मिला मगर साहित्य के नाम पर कुछ नहीं. आसपास बंगाली परिवार ज़्यादा और हिंदी भाषी कम थे. बंगला बोलना मुझे आती न थी पर कुछ महीनों में टूटी-फूटी बंगला बोलने लगी. अब मैं इस समाज में मिसफिट न थी. इस कार्य में मेरे डॉक्टर पति ने बहुत सहयोग किया. हिंदी-बंगला पुस्तिका ख़रीदी. हां, बोलना तो सीखा पर पढ़ना अभी तक नहीं जानती. मेरे पति का कहना था अगर बंगला पढ़ना सीख जाओगी तो बंगाल के महान साहित्यकारों को पढ़ सकती हो. पर इतनी मेहनत करने की ज़रूरत नहीं पड़ी. सबके अनुवाद भरे पड़े हैं और मैंने जमकर क़िताबें ख़रीदीं और ख़ूब पढ़ा. जिनमें प्रमुख थे विमल मित्र, रविंद्रनाथ टैगोर, शरतचंद्र, आशा पूर्णा देवी, सुकुमार राय, बंकिमचंद, महाश्वेता देवी, ताराशंकर बंधोपाध्याय, विभूति भूषण, शंकर, बनफूल आदि कई लेखक. बंगला पिक्चर यहीं आकर देखना शुरू किया, टी.वी. पर. बाद में ऐसा चस्का लगा कि पुरानी जितनी भी बंगला ब्लैक एंड वाईट पिक्चर दिखायी जातीं — सब देखीं. सत्यजीत रे की फ़िल्मों से लेकर मृणाल सेन तक, कुछ भी नहीं छोड़ा. सचमुच बंगाल की धरती अपने उत्कृष्ट साहित्य और महान फ़िल्मकारों की वजह से और भी उर्वर, अजर-अमर हो गयी है. मैंने दोनों का भरपूर लाभ उठाया जिससे मेरा साहित्य लेखन थोड़ा समृद्ध ही हुआ.

यहां बंगाली लोगों के अलावा कुछेक बिहारी व मारवाड़ी परिवार भी थे. सबसे अच्छी निभती. प्रकृति के बीच रहने का मज़ा क्या होता है, यहीं देखने को मिला. चंद क़दमों पर बहती कलकल गंगा. उसमें तैरती नावें, स्टीमर, बड़े-बड़े जहाज एक अनूठा दृश्य उपस्थित करते. जहां सूर्योदय हर दिन अचंभित करता, वहीं डूबता हुआ सूरज गंगा की सतह पर बहुत देर तक अपनी रोशनी फैलाये रखता — और वह पीली रोशनी सोने की चादर सदृश उस पार से इस पार चली आती थी. मैंने अब तक भारत के अलावा दुनिया के कई देशों में सूर्योदय व सूर्यास्त का दृश्य देखा है पर जैसी छटा अपने हाज़ीनगर के इस कैंपस में रहते हुए देखी वह अवर्णनीय है, अनूठी है.

सन् १९७८ में मुझे एक बेटे की मां बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. आज अभिजीत (जीतू) एक अमेरिकन कंपनी में सॉफ्टवेयर इंज़ीनियर है. कई वर्षों तक अमेरिका (न्यूजर्सी) रहने के बाद यहीं कोलकाता के साल्ट लेक इलाके में उसी कंपनी में कार्यरत है. चार वर्ष पूर्व उसकी शादी हुई और अब वह ख़ुद एक सुंदर सी बिटिया का पिता बन गया है.

जीवन में सबको मनचाहा नहीं मिलता और न ही कभी सुख ही सुख. दुख क़िस्मत में लिखा लायी थी. बड़े पुत्र के जनम के छह वर्ष बाद सन् १९८४ में हमारी दूसरी संतान हुई. दिली इच्छा थी इस बार बेटी होती, पर बेटा हुआ. ख़ुशियां अब भी कहीं से कम न थीं. बड़े शौक़ से हमने उसका पुकार का नाम हारू रखा. बंगाल में यह नाम बड़ा प्रचलित है. दुर्भाग्यवश उसके जन्म के चार महीने बाद ही पता चला हारू एक गंभीर बीमारी 'थैलासीमिया' से ग्रस्त है. यह रक्त संबंधित एक जानलेवा रोग है जिसमें अपना ख़ून नहीं बनता. मेरे पति के तो होश ही उड़ गये चूंकि स्वयं डॉक्टर थे इसलिए इसकी विभीषिका से वे परिचित थे. उसकी बीमारी सुन के बहुतों ने कहा — उसका नाम बदलकर हारू से अन्य कर दो. छोटी उम्र में ही हारने लगा. बड़े बेटे का नाम जीतू था. हमने सोचा– विचारा और हारू से नाम बदल करके 'हीरू' रख दिया ताकि उसे संबल मिले, पर यह सब मन का छलावा था. हां उसका दूसरा नाम हर्षवर्द्धन था — यह नाम ही उसे कहां बचा पाया! उस छोटी उम्र से ही हीरू को महीने में दो बार ख़ून चढ़ाने की कवायद शुरू हो गयी जो उसकी

उम्र के पौने सात वर्ष तक चलता रहा जब तक कि उसने हमेशा के लिए अपनी आंखें न बंद कर लीं. यह सन् १९९१ की पांच जुलाई थी.

ये सात वर्ष हमारे लिए किसी दुःस्वप्न से कम न थे. हमसे ज़्यादा तो उस बच्चे ने अंतहीन कष्ट सहा. महीने में दो बार कोलकाता जाकर ख़ून चढ़ाना, रुपया पैसा, समय, प्यार-ममता सब कुछ ख़र्च करने के बाद भी हम इस युद्ध को हार गये. उसके इलाज के लिए हमने खेत-खलिहान, गहने, ज़मीन-ज़ायदाद आदि बेचने तक का सोच लिया था पर इतना करने पर भी रिजल्ट ज़ीरो होता. भावुकता पर नियंत्रण रखा गया तो वहीं लोगों के दबाव में आकर महामृत्युंजय का जाप भी करवाया परंतु नियति को तो कुछ और ही मंजर दिखाना था. ईश्वर से वैसे भी ख़ूब लगाव न था और इस घटना ने तो जले पर नमक छिड़क दिया. इस दुखद होनहारी के बाद ईश्वर शब्द से नफ़रत तथा हमेशा के लिए उनसे छत्तीस का आंकड़ा बन बैठा.

इस त्रासद घटना के बाद कई महीनों तक मैं संज्ञाशून्य सी बनी रही. कई बार आत्महत्या का विचार पनपा लेकिन लंबी आयु लिखा लायी थी इसलिए आत्महत्या जैसा बोल्ड क़दम न उठा सकी. ऐसे वक़्त में पति, सास ससुर, मेरे मां-बाप, भाई बहनों ने मेरे दिल को संभाला और बहुत कुछ खोकर फिर से नये जीवन का संचार मन में भरना शुरू किया. आंखों के सामने अब अभिजीत था. उसकी पढ़ाई-लिखाई, कैरियर और अपना विस्मृत साहित्य व गीत, संगीत जो अर्से से भुला बैठी थी, फिर से जाग्रत हुआ. और इस बार आगे बढ़ी तो पीछे लौटने की कोई वजह न मिली. सन् १९९१ से मैंने दुबारा काग़ज क़लम उठायी. पत्र लेखन से लेकर कहानी, कविताएं प्रारंभ हो गयीं. मेरे पति का इसमें बड़ा सहयोग मिला. भले वे लेखन का काम नहीं करते पर साहित्य में उनकी अपार रुचि है. कई नामी साहित्यकारों की कविताएं उन्हें कंठस्थ हैं और जब-तब कविता पाठ करते हैं (घर में). वही हाल पुराने गीतों के साथ भी है — सैकड़ों गीत मुखस्थ हैं. न किसी डायरी की जरूरत न किसी पुस्तक की. इतना ही नहीं हर तरह का वाद्ययंत्र भी बजाना जानते हैं तथा घर में ख़रीद कर रखा भी है.

इस बीच श्री प्रकाश चंडालिया जी से मेरी मुलाकात हुई जो इसी जूट मिल के एक सीनियर स्टॉफ के बेटे थे. प्रकाशजी तब कोलकाता के अख़बार जनसत्ता में कार्य करते थे. उन्होंने मुझे प्रोत्साहित किया और मेरी कई चिट्ठियां संपादक के नाम तथा लघुकथाएं, कविताएं 'सबरंग' में छपीं. फिर तो 'सन्मार्ग', 'छपते-छपते', 'विश्वामित्र' आदि कई अख़बारों ने मेरे लेखन को सराहा और इनके दीपावलीं विशेषांकों में भी बिला नागा छपने लगी. अब बारी थी रेडियो स्टेशन से कहानियां पढ़ने की. वह शौक़ भी पूरा हुआ. अब तो कई पत्र वहां से आकर पड़े हैं. पर जाना नहीं होता. हाज़ीनगर से कोलकाता जाने में दो से तीन घंटे लगते हैं. इस बीच मेरा पहला कहानी संग्रह 'बसेसर की लाठी' प्रकाश जी ने छापा. इसका लोकार्पण कोलकाता के महाजाति सदन में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री चंद्रशेखर जी के हाथों संपन्न हुआ. अख़बारों से लेकर दूरदर्शन तक में इसका प्रसारण दिखाया गया. वाकई उस दिन मुझे बड़ा गर्व महसूस हुआ. मेरा पहला क़दम हिंदी साहित्य फलक पर उठ चुका था. इस उपलब्धि पर मेरा पूरा ख़ानदान ख़ुश था. सच पूछिए तो कहानी-कविताएं लिखने वाली मैं अकेली बेटी-बहू थी. इस पुस्तक की भूमिका प्रसिद्ध राजस्थानी लेखक श्री विजयदान देथा 'बिज्जी' ने लिखी थी. मुझे अभी भी आश्चर्य होता है मेरे मात्र एक आग्रह पर उन्होंने इतनी सुंदर भूमिका लिख भेजी थी. यह मेरा सौभाग्य ही तो है. उन्होंने अपनी सारी पुस्तकें मुझे पढ़ने के लिए भेजीं. उनके ढेरों पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं. प्रकाश जी अब अपना ख़ुद का एक सांध्य अख़बार 'महानगर गार्जियन' निकालते हैं और उत्तरोत्तर उन्नति की राह पर हैं. उन्होंने मेरे लेखन को आगे बढ़ाया और मदद की. इस बात के लिए मैं आजीवन ऋणी हूं.

लेखन का कार्य अब तेज़ी पर था. भारत के सभी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं छपने लगी थीं. एक दिन इन सबका आंकड़ा बटोरा तो इनकी संख्या अस्सी पच्चासी तक जा निकली. इस बीच आरा आना-जाना लगा रहा. मेरी ख़ुशी, मेरा उत्साह बढ़ाने के लिए पापा ने घर में कई बार साहित्यिक गोष्ठियां रखवायीं जिनमें आरा के सभी प्रमुख कथाकार शामिल होते थे. मिथिलेश्वर जी का साथ तो था ही. 'बसेसर की लाठी' के बाद मेरी दूसरी क़िताब 'परिवर्तन' थी, जो एक लघुकथा संग्रह था. घर-गृहस्थी के साथ साहित्य लेखन व देश-विदेश की यात्राएं भी होती रहीं.

भारत को काफ़ी हद तक देखने के बाद विदेश यात्रा में अब तक तेईस देश घूम चुकी हूं और सबको बतौर यात्रा वृतांत क़लमबद्ध भी किया है.

मेरी लेखनी के सबसे बड़े प्रशंसक मेरे पापा थे. मेरी छपी एक छोटी चिट्ठी भी उन्हें आनंदित कर जाती. किसी कारणवश कभी कुछ छपने में देर होती तो वे चिंतित हो जाते थे — फ़ोन पर कह उठते, 'क्या बात है कुछ लिखा नहीं! या मुझे डाक से भेजा नहीं? याद रखना यह क़लम ही तुम्हारी पहचान बनेगी सो आगे रुकना नहीं....' पापा की उत्साहभरी आवाज़ मुझे सतर्क करती और मैं नयी उमंग से भर जाती. आरा जब भी जाती, पापा मेरी साहित्यिक खोज ख़बर लेते — नया क्या लिखा है, आगे की क्या योजना है, अगली बार कहां की सैर है आदि-आदि बातें. घर में हर वक़्त साहित्य की चर्चा सुन कर मेरी अम्मा कह उठतीं, 'शिवानी की चाची कलकत्ता से आ गइली, अब घर में दूसर कौनो बात ना होइल...' अम्मा की बात सुनकर हम हंसते.

अम्मा का मुझे 'शिवानी की चाची' संबोधन देना, मेरे लिए किसी बड़े पुरस्कार से कम न था. मुझे अच्छी तरह पता था मैं कभी शिवानी जी की चरण धूलि के बराबर भी नहीं हो सकती, पर अपने साथ शिवानी का नाम जुड़ते देख बेइंतहा ख़ुशी मिलती. इसी प्रसंग से जुड़ी कुछेक और बातें कहती चलूं — मेरी कई कहानियों पर लोगों ने यह प्रतिक्रिया जताई कि पढ़ते हुए 'प्रेमचंद' की लेखनी याद आ जाती है. सुनकर, पढ़कर ऐसी बातें मेरी आंखें भर आती हैं. अब तक मेरी कई कहानियों को कहानी प्रतियोगिताओं में प्रथम पुरस्कार से नवाज़ा गया है तो कई कहानियां यूं भी पुरस्कृत होती रही हैं.

मेरे पापा को पढ़ने का बहुत शौक़ था. ख़ासकर अंग्रेज़ी पुस्तकें. उनमें गांधीजी से संबंधित क़िताबें ज़्यादा थीं. ख़ूब पढ़ते और ख़ूब चर्चा भी करते. मैं जब भी आरा जाती नामी लेखकों की कविताएं-कहानियों का सारांश मुझे बताते.

सन् २००६ के जून माह में, मेरे पापा की मृत्यु हुई. उस वक़्त मैं अमेरिका घूम रही थी. मेरा बेटा तब न्यूजर्सी में कार्यरत था और उससे रोज़ाना फ़ोन पर बातें होती थीं. उसे अपने नाना के गुज़रने की ख़बर थी पर उसने मुझे नहीं बताया, यह सोचकर कि मैं अपनी यात्रा का आनंद नहीं ले पाऊंगी. जब लौटकर दिल्ली एयरपोर्ट आयी, दिल्ली में स्थित बहनों से बात की तो इस दुखद ख़बर की जानकारी मिली. मैं वहीं फूट-फूट कर रो पड़ी. पति ने मुझे ढांढस बंधाया. इस ख़बर से वे पूर्व परिचित थे. मुझे आश्चर्य हुआ. इन सबके पीछे अम्मा थीं. उनका कहना था — माला ग्रुप में घूमने गयी है, वह दुखी होगी तो उसके संग साथ वाले भी दुखी होंगे इसलिए इस ख़बर को रोक कर रखा जाये. मैं नतमस्तक थी. हाज़ीनगर लौट कर मैं तुरंत अम्मा से मिलने आरा गयी. अम्मा तटस्थ थीं पर घर-दुआर पापा के बिना सूना था. इतना बड़ा हवेलीनुमा घर अपने मालिक को खोकर मानो अनाथ हो गया था, जैसे हम सब. कहने को तीन मंज़िला मकान और रहने वाली सिर्फ़ अम्मा. दोनों भाइयों ने अम्मा को अपने संग ले जाने की जिद की पर अम्मा अपना घर छोड़कर जाने को तैयार न हुईं. वैसे बड़ा भाई विनीत हर वीकेंड पर पटना से आरा आता और एकाध दिन रहकर वापस लौट जाता.

पापा अपनी पूरी ज़िंदगी जीकर गये. लगभग नब्बे वर्ष लेकिन हमें तसल्ली न थी. पापा को खोने का दुख सबको था पर मेरे लिए तो वे पापा कम मेरे दोस्त, मेरी हर रचना पर उद्वेलित होनेवाले एक ईमानदार शुभचिंतक थे. इस दुखदायी घटना से उबरने में कई महीने लग गये. लेखन एक बार फिर रुका. जी को बहलाने के लिए जब भी कुछ लिखने का प्रयास करती — लगता किसके लिए! रचना की पहली ज़िरॉक्स कॉपी किसे भेजूं? कौन पढ़ेगा, कौन सराहेगा? मन अंधेरे में डूब जाता. एक रात सपने में पापा को देखा वे मुझे समझा रहे थे, 'लिखना मत छोड़ो.' मैं घबराकर उठ बैठी. मेरे मन की बात पापा तक कैसे पहुंची! महसूस हुआ, तो क्या पापा कहीं आसपास ही थे? दूसरे दिन मैं बड़े उत्साह में थी. दुख की चादर परे की और फिर जुट गयी लेखन में. इस बार पापा के ऊपर ही कई कविताएं लिख डालीं. पन्ने रंगते गये साथ में आंसू बहते रहे. पापा के गुज़रने के बाद मेरी छह क़िताबें और निकलीं पर अफ़सोस वे नहीं देख पाये.

पापा के जाने के बाद मायके में अम्मा रह गयीं. डॉक्टर भाई की अपनी पत्नी के साथ आवाजाही थी. मेरी रचनाएं अम्मा मनोयोग से पढ़तीं, मानो पापा का गम भुला देना चाहती हों. पापा का रिक्त स्थान बहुत हद तक उन्होंने भर दिया था. लेकिन कितने दिन! सन् २०१० की वह दो जुलाई, हार्ट अटैक की शिकायत और आनन-फानन में

कविता

मेरी पाती नदी के नाम

✍ लक्ष्मी रूपल

तुम जब भी उधर जाओ
दे देना मेरी पाती,
उस छोटी सी नदी को
जो मेरी ही उम्र की है.
एक समय, भरी पूरी थी,
युवा थी. चंचल थी.
रीत गयी होगी अब तो
सिकुड़ गयी होगी,
निचुड़े हुए कपड़े सी,
भीतर से गीली
ऊपर से सूख गयी होगी
थक गयी होगी
लोगों की प्यास बुझाते-बुझाते
हार गयी होगी
शहर भर का
मैला ढोते-ढोते
ठहर गयी होंगी
उसकी नाचती, उछलती लहरें,
अथवा वह मर मिटी होगी
किसी बांध का
हिस्सा बन कर,
नहीं तो, लुप्त हो गया होगा
उसका सारा अस्तित्व
खारे समुद्र में डूबकर
अंधी, बहरी भीड़ से
दूर हट कर
कभी तुम पहुंच जाओ
उसके तट पर
तो, कह देना
मेरा सलाम उसको.

बी ३-२०१ निर्मल छाया टॉवर्स, वी.आई.पी.रोड, ज़िरकापुर, मोहाली - १४० ६०३, मो.-९८७६२६९३६९

अम्मा ने भी अपना कृषकाय शरीर समेटा और हमें अनाथ कर गयीं. मृत्यु पश्चात भी उनका चेहरा उतना ही स्निग्ध, ओजपूर्ण व सुंदरता में डूबा था जिसे हमने उनके पूरे जीवनकाल में देखा था. हमारी ज़िंदगी का एक और महत्वपूर्ण पत्ता हमसे ज़ुदा हो गया. वज्रपात ही तो था! इस दुख को भी हम सभी भाई बहनों ने झेला और गुज़रते वक़्त के साथ समझौता किया.

लेखन की एक लंबी अवधि बीत रही है. अब तक मेरी बारह पुस्तकें निकल चुकी हैं. जिनमें तीन कथा संग्रह, एक लघुकथा संग्रह, दो कविता संग्रह तथा छह यात्रा वृतांत. इस वक़्त चार-पांच पांडुलिपियां हर विधा में तैयार हैं. देखना है ये किस प्रकाशक के माथे पड़ती हैं. पुस्तकें छपवाना बहुत जटिल कार्य है. प्रकाशक हर मामले में लेखक पर दबाव कसे रहता है. उस पर प्रूफ रीडिंग का काम जो बड़ा बोरियत भरा होता है. क़िताब अपनी है सो मेहनत करना ही पड़ता है. उसके बाद भी आपको चैन मिले तो समझूं कि सार्थक हुआ इतना मेहनत करना. ख़ैर, एक बार लिखने का नशा हो जाये तो यह शराब-सिगरेट-बीड़ी की तरह जल्दी छूटता नहीं, जब तक ख़ुद के प्राण न निकल जायें. हां, इसमें जो आनंद प्राप्ति है उसे कोई रचनाकार ही समझ सकता है. इसमें खटनी कम नहीं फिर भी कोई कहां रुकता है. ठीक ही तो, इतना लिखने के बाद भी लगता है अभी बहुत कुछ लिखना बाक़ी है. वैसे सच्चाई तो यह है कि घर-गृहस्थी के बीच किसी महिला के लिए निरंतर लिखने रहना बहुत मुश्किल काम है जबकि पुरुष लेखक बहुत हद तक स्वतंत्र हैं. आख़िर हम अपने लिए रोज़-रोज़ समय कैसे चुरा सकते हैं! पर चलिए....जीवन में किसी बात के लिए हार नहीं माननी है.

बातें तो अनगिन हैं पर अब इसे समेटना होगा. इस यात्रा पथ पर मेरे घर-परिवार, सगे संबंधियों के साथ कुछ शुभचिंतक ऐसे हैं जिनसे वर्षों से पत्राचार चल रहा है. संग में मोबाइल से बातचीत भी. उनसे लेखन संबंधित सलाह, बात के साथ कहां क्या छपा है, क्या चल रहा है आदि-आदि कई बातें शेयर होती हैं और यह सब मेरी लेखनी को और पैना बनाती हैं. इनमें एक प्रमुख नाम है सलुवा (प. बंगाल) के श्री श्याम कुमार राई जिन्होंने मेरे लेखकीय उत्साह को हमेशा अपनी चिट्ठियों व टेलीफ़ोनिक संवाद से बढ़ाया है. कई वर्षों से वे अपना ख़ुद का बारह पन्नों का मासिक पत्र 'नई दिशा' निकालते हैं. इसमें एक साथ हर विधा की सुंदर, स्तरीय रचनाएं पढ़ने को मिलती हैं. मेरा तो इतना विश्वास है कि इस पत्र (अख़बार) को जो एक बार देख-पढ़ ले वह ज़रूर उनका फ़ैन हो जायेगा. इस साहित्यिक शौक़ के अलावा उन्होंने एक और जुनून पाल रखा है और वह है — पुराने गीत-संगीत की जानकारी. आश्चर्य ! हर प्रश्न का जवाब उनके पास है. मेरे लिए अच्छा है, कहीं कोई बात अटकी कि चलो श्यामजी को फ़ोन मिला लो. मेरे डॉक्टर पति के साथ भी इनकी ख़ूब बनती है, तब साहित्य की नहीं फ़िल्मी संगीत की बातें होती हैं.

इस कड़ी में एक और शुभचिंतक हैं पटना निवासी श्री मोहन कुमार सरकार. मुझे याद है धर्मयुग, कादंबिनी आदि कई पत्रिकाओं में इनकी चिट्ठियां ख़ूब छपती थीं. तब मैं इनसे परिचित न थी और हर जगह इनका नाम देख यही सोचती जब ये महाशय इतना लिख सकते हैं, छप सकते हैं तो फिर मैं क्यों नहीं और इसी कंपीटिशन में मेरी चिट्ठियां छपतीं. मोहन कुमार सरकार ने भी हर विधा में ख़ूब लिखा है जिसमें देश-विदेश का भ्रमण वृतांत भी है. मोहनजी हैं तो खांटी बंगाली बंधु पर इनकी हिंदी में लिखी चिट्ठियां आप पढ़ लें तो अवाक रह जायें. शुद्ध साहित्यिक हिंदी भाषा और लिखावट जैसे पन्नों पर किसी ने मोती सजा दिये हों.

इस साहित्यिक यात्रा के दौरान कई महान लेखकों को पत्र लिखा और उन्होंने जवाब भी दिया. जिसमें शिवानी, विजयदान देथा, मिथिलेश्वर, के. पी. सक्सेना, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, हिमांशु जोशी, ऋता शुक्ल आदि ढेरों नाम हैं. इन सबकी चिट्ठियां मन प्राण से सहेज कर रखी थीं पर मैंने अब उन्हें श्री राजुरकर राज (संपादक शब्द शिल्पियों के आसपास) के भोपाल स्थित 'दुष्यंत कुमार स्मारक संग्रहालय' में सुरक्षित रखने के लिए भेज दी हैं. इसके लिए मैं उनकी आभारी हूं. शुभचिंतकों की इस कड़ी में एक विश्वनाथ यादव जी थे जो क़रीब ही स्थित एक पेपर मिल में काम करते थे. यादव जी मेरे पति के पुराने परिचित थे. जब उन्हें पता चला मैं लेखन में रुचि रखती हूं तो कभी-कभार घर आने लगे. ख़ुद एक साहित्यकार थे. उन्होंने कहानियां-कविताएं भी लिखीं पर अधिकतर फोकस सत्य घटनाओं पर आधारित ऐतिहासिक मुगलकालीन कहानियां होती थीं जो 'सरिता' में प्रमुखता से छापी जाती थीं. बड़े उत्साह से अपनी कहानियां व पुस्तकें मुझसे शेयर करते. ले देकर क़रीब में यही एक लेखक थे जिनसे इत्मीनान से साहित्यिक चर्चा होती थी. पर अफ़सोस कुछेक वर्ष पूर्व उनकी मृत्यु हो गयी.

अब अंत में....'कथाबिंब' की पुरानी पाठिका हूं और इस 'आमने-सामने' कॉलम को बड़े मनोयोग से पढ़ती थी और सच कहूं तो यह मेरा सपना था कि इस स्तंभ के लिए मैं सक्षम हो सकूं. आख़िरकार मौक़ा मिला और आत्मकथ्य प्रस्तुत है. इस आमने-सामने के कई कथाकारों जो पूर्व में छप चुके हैं — कइयों से पत्राचार व फ़ोन पर बातें भी हुईं, जिनमें स्व. सुनील कौशिश, विकेश निझावन, स्व. रमेश नीलकमल इनकी बेटी का नाम भी माला था और इनसे बड़ा आत्मीय संबंध बन गया था. संतोष श्रीवास्तव, सुधा अरोड़ा, राकेश कुमार सिंह (आरा के ही हैं), सूरज प्रकाश, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया जी शामिल हैं.

आमने-सामने में छपने का ख़्वाब पूरा तो ज़रूर हुआ पर इस आत्मकथ्य ने कई-कई पुरानी यादों को झकझोर दिया. बातें असंख्य हैं अगर सबको बटोरा जाये तो कई सौ पन्नों का दस्तावेज़ तैयार हो जाये पर आज नहीं ...कभी दुबारा मौक़ा मिला तो जो छूट गया उसे समेटूंगी. इस एक जीवन में जहां ख़ुशियां दिखीं वहां गम भी मिले पर जीवन इन्हीं के बीच हिचकोले खाता आगे बढ़ता है. चलते-चलते अंत में — किसी भी मोड़ पर अगर हम बुरे लगे तो ज़माने को बताने के पहले एक बार हमें ज़रूर बता देना....

हाजीनगर, २४ परगना उत्तर
पं. बंगाल-७४३१३५.

बाइस्कोप

मज़ाहिर रहीम : एक अभूतपूर्व व्यक्तित्व

✍ *सविता बजाज*

(साहित्य और फ़िल्म का चोली दामन का साथ है. हमारे विशेष अनुरोध पर जानी मानी फ़िल्म, टी.वी., मंच कलाकारा व पत्रकार सुश्री सविता बजाज 'कथाबिंब' के लिए चलचित्र जगत से संबद्ध साहित्यकारों के साथ बिताये क्षणों को संस्मरण के रूप में प्रस्तुत कर रही हैं.)

क़रीब पच्चीस साल पहले की बात है मैं फ़िल्म डिवीज़न की छोटी-छोटी फ़िल्मों में काम करती थी और उन्हीं फ़िल्मों की वजह से कई नामी-गिरामी फ़िल्म वालों से पहचान बढ़ी. रेखा (अभिनेत्री) से पहचान की वजह भी वे छोटी फ़िल्में ही थीं. उन्हीं दिनों एक मझले क़द के गोरे-चिट्टे नौजवान से मिली जो अभूतपूर्व व्यक्तित्व का मालिक था. फ़िल्म मेकिंग के सारे गुरों से संपन्न था. वह फ़िल्म डिवीजन का डायरेक्टर भी था और ख़ूब पढ़ा-लिखा, सुलझा हुआ व्यक्ति था. उन्होंने टेलीफ़िल्म 'रोशनी' की कहानी लिखी थी जो एकदम सच्ची थी और हेज़ल आंटी का मुख्य पात्र मैंने निभाया था. भीमसेन जी फ़िल्म के निर्देशक थे. वहां रहीम जी के साथ मैंने ख़ूब काम किया.

आज भी रहीम जी पहले जैसे ही दिखते हैं, हां बालों में कहीं-कहीं सफ़ेदी झांकती है. शरीर और दिमाग़ की फ़ुर्तीली बस देखते ही बनती है. आप फ़िल्म राइटर्स ऐसोसिएशन में वेबसाइट के एडीटर और डिज़ाइनर तो हैं ही, कोषाध्यक्ष भी हैं. एक दिन फ़ि. रा. ए. के दफ़्तर में ही हमारी बातचीत कुछ यूं चल निकली. रहीम बता रहे थे —

सविता मैं पूना का रहनेवाला हूं और हमारा वहां पेट्रोल पंप था जहां मैं भी बचपन में कभी-कभी जाकर बैठता. बारह साल की उम्र में अंग्रेज़ी कविता लिखने लगा. मेरे एक कज़िन ने कविता पढ़ी तो हैरान रह गया. वह मुझे 'पूना हैरल्ड' पत्रिका के संपादक अलील डेविड के पास ले गया. मेरी कविता हर हफ़्ते एक कॉलम में छपने लगी और पंद्रह रु. भी मिलने लगे. मेरा कॉलम बहुत मशहूर हो गया. फिर 'पूना डेली न्यूज़' में भी मेरा कॉलम छपने लगा. वहां मुझे प्रति कॉलम चालीस रु. मिलते. यह कॉलम तो चार-पांच साल ख़ूब चला. स्कूल की पढ़ाई भी ज़ारी थी. मैं चौदह साल का हो चुका था. पैसे इकट्ठे कर मैंने बोलेक्स कैमरा और हाथ वाली ऐडिटिंग मशीन ख़रीदी. लेखन तो मैं कर ही रहा था, निर्देशन और कैमरा भी चालू हो गया. अपने पेट्रोल पंप के बारे में एक डाक्यूमेंट्री बनायी जो ख़ूब चली.

हमारे पेट्रोल पंप के एक एजेंट थे मि. फ़ोबर, उन्होंने मुझे करेंट न्यूज़ पेपर के संपादक डी. एफ. कराका से मिलवाया तो मेरी दुनिया ही बदल गयी. उन्होंने मुझे 'करेंट न्यूज' में एक कॉलम दिया. 'पाइंट साइज़' जिसके लिए मैं बड़ी-बड़ी हस्तियों के साक्षात्कार करता, उनके फ़ोटो छापता जैसे शर्मिला टैगोर. (उनकी शादी से पहले की बात है) विजय मर्चेंट वग़ैरह. मतलब नामी फ़िल्म वाले भी करेंट में छपने लगे. वह कॉलम पांच साल तक लिखता रहा. आगा ख़ान, बीटल्स, वी. वी. गिरी, इंदिरा गांधी, क्वीन ऐलीज़ाबेथ, जीवन मेहता, इस्माइल मर्चेंट वग़ैरह कितने नाम गिनाऊं. पढ़ाई भी चल रही थी. बी.ए. किया, एल.एल.बी. किया. विदेशों में जाकर भी फ़िल्मों की पढ़ाई की.

आप तो पूना फ़िल्म इंस्टीटयूट के हैं न, वहां क्या किया था?

मेरी पढ़ाई-लिखाई की प्यास निर्देशन की पढ़ाई लिखाई किये बिना कैसे बुझती. आना तो फ़िल्मों में ही था न. ख़्वाजा अहमद अब्बास जी से लेखन के सिलसिले में मिलना होता रहता था. वे उन दिनों ब्लिट्स के लिए लिखते थे. उन्होंने मुझे पूना फ़िल्म इंस्टीट्यूट का फ़ॉर्म लाकर दिया और बोले — इसे भरो, वहां चले जाओ और कुछ सीखो. मेरा नसीब

बी.ए. (ऑनर्स), एल. एल. बी.,
एफ. टी. आई. आई. पुणे से डिप्लोमा, डिप. एजू.

मुंबई फ़िल्म उद्योग के सफल निर्माता, लेखक, संवादक व निर्देशक. आठ वर्षों (१९७७-१९८५) तक फ़िल्म डिवीज़न (भारत सरकार) के निर्देशक. लगभग ४० डॉकूमेन्ट्रीज़ का लेखन व निर्देशन किया. ६ बड़े टेलीविजन सीरियलों का निर्माण व संपादन. अनेक फ़िल्मों के निर्माण से संबद्ध.

'मेहफूज़', रो हाउस-१७, मालवानी समता नगर कॉम्प्लेक्स, मलाड (प.), मुंबई-४०००९५. मो. : ९८७०२०३७२३

देखो, सविता चयनकर्ताओं में अब्बास साहब भी थे. मेरा चयन हो गया और मैंने वहां से निर्देशन का कोर्स किया.

फ़िल्मों में असली स्ट्रगल कब और कैसे शुरू की?

नहीं, मुझे कभी ज़्यादा स्ट्रगल नहीं करनी पड़ी क्योंकि मेरे पास फ़िल्म मेकिंग के हर पहलू की योग्यता थी. पचासों डिग्रियां थीं. हां, पूना से निकलने के बाद निर्देशक केवल मिश्रा के साथ जुड़ गया. 'दो शत्रु' फ़िल्म की. रवैल साहब के साथ ऐसोसिएट डायरेक्टर बना, फ़िल्म थी 'लैला मजनू'. छोटी-छोटी फ़िल्में ख़ूब मिलीं उन दिनों. निर्देशक किया, लेखन किया, एडिटिंग भी की. फ़िल्म डिवीज़न के डायरेक्टर का पद क़रीब आठ साल संभाला. जब आप मिली थीं फ़िल्म 'रोशनी' के दिनों में लेखन भी कहीं न कहीं चल रहा था.

एक बात कहूं, बुरा तो नहीं मानोगे, मैं आप को उन दिनों प्रोडक्शन वाला समझती थी. क्योंकि सेट पर आप हर डिपार्टमेंट में थे.

अरे बाबा मैं आल राउंडर हूं न. और मुझे झूठी इगो नहीं. इसीलिए तो आज तक इंडस्ट्री में टिका हुआ हूं. क़रीब नब्बे के आसपास डाक्यूमेंट्री फ़िल्में बनायीं, लिखीं भी मैंने. निर्देशन भी किया. छः टेलीविजन सीरियल बनाये. कइयों में तो आप भी थीं, याद है न. निर्देशन किया, लिखा और एडिटिंग भी की.

आप मुझे एक बार एयरपोर्ट पर भी तो मिले थे. दिल्ली जा रहे थे कोई शायद अवार्ड लेने.

अरे सविता मैं दिल्ली अपनी फ़िल्म 'अगर आप चाहे' का नेशनल अवार्ड लेने जा रहा था. कोई छोटा-मोटा अवार्ड नहीं.

बरसों पहले भी ख़ूब बिज़ी थे, आज कुछ ज़्यादा बिजी हैं, स्ट्रगल चल रही है?

नहीं, काहे की स्ट्रगल? जीवन है, कुछ तो अपनी तबियत अनुसार करना है न. सारी पढ़ाई-लिखाई तो फ़िल्म मेकिंग के लिए की. सब अच्छा है, बस, काम करते जाओ अच्छा–अच्छा.

आपकी सोच बहुत सकारात्मक है इसीलिए उम्र का असर न चेहरे पर पड़ा, न शरीर पर !

(रहीम बच्चों के समान इतने ज़ोर से हंसे कि पूछिए मत.) फिर बोले - थैंक यू सविता हम लोग पहले भी अच्छे दोस्त थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे.

अच्छा एक बात बताओ आजकल जो फ़िल्में, सीरियल बन रहे हैं, कैसा लगता है देखकर?

सब ठीक है. पहले भी अच्छी कहानियां थीं, आज भी हैं. हां, पहले उनमें रस होता था, कहने को कुछ होता था. आज अपनी ऊपरी चीज़ें छोड़कर कुछ नहीं होता. सब बिज़नेस हो गया है. आर्ट नाम की चीज़ निकल गयी. कहानी में दम तो आज भी होता है लेकिन ऊपरी-ऊपरी दिखाकर छोड़ दिया जाता है. वैसे दूरदर्शन के अच्छे सीरियल आज भी बनते हैं लेकिन...

मैं फिर चहकी देखनेवाले कहां है दूरदर्शन?

रहीम जी कुछ न कहकर बस, मुस्कुरा दिये.

पो. बॉक्स-१९७४३,
जयराज नगर, बोरिवली (प.),
मुंबई-४०००९२
फ़ोन : ९२२३२०६३५६

मानवीय संबंधों का सकारात्मक यथार्थ है 'तथास्तु' ।।

✍ ब्रजेंद्र गर्ग

'तथास्तु' (कहानी संग्रह) **: राजेंद्र आहुति**
प्रकाशक - अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर,
मुजफ्फरपुर-८४२००२. मू. २०० रु.

कहानी के तत्व हमारे आस-पास ही बिखरे होते हैं. उन्हें हम मात्र जीवन के दैनिक घटनाक्रम से अधिक महत्व नहीं दे पाते लेकिन एक कुशल रचनाकार उन्हीं तत्वों से दो चार होते हुए, एक ख़ूबसूरत आयाम देते हुए संवेदनात्मक पृष्ठभूमि तैयार कर लेता है. ऐसे ही कुशल रचनाकार हैं कवि व कथाकार राजेंद्र आहुति. राजेंद्र आहुति को लोग कथाकार कम कवि के रूप में ही अधिकांशतया जानते हैं. उनकी गिनी-चुनी कहानियां ही पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं. कविता संग्रह 'अकारण' के बाद हाल ही में राजेंद्र आहुति की २० कहानियों का संग्रह 'तथास्तु' प्रकाशित हुआ है.

संग्रह की पहली कहानी 'मानस गंध' बीमार और असहाय बाप की बेबसी की कहानी है. कर्ज़ के लिए अंततः उसे बेटी के शरीर से मानस गंध आती है. परिवार के भरण-पोषण के लिए बेटी नौकरी करती है, जहां उसका बॉस उसका 'लोन' स्वीकृत करने के लिए उसे अपने क्वार्टर में आने का 'ऑफ़र' देता है. औरत की मज़बूरी का फ़ायदा उससे वह सब कुछ कराता है जिसे उसकी आत्मा स्वीकार नहीं करती. विवशता में काम करने वाली युवतियों के विरुद्ध व्याप्त शोषणतंत्र को तार-तार करती है कहानी 'मानस गंध!' आहुति कथ्य और शिल्प की मर्यादा को बचाये रखते हैं.

'बर्थ डे' में बेटी की साल गिरह को संक्षिप्त समारोह पूर्वक मनाने की अभिलाषा बाप के निष्ठुर मित्रों व परिचितों की उदासीनता या महंगाई के बोझ में दबे सस्ते और महंगे गिफ़्ट के उलझाव में घुटकर रह जाती है. अंततः अति उदारता दिखाने वाला एक भी मित्र वायदे के बाद भी नहीं पहुंच पाता है. आज के समाज के स्वार्थी संबंधों की कलई खोलकर रख देती है 'बर्थ डे' कहानी.

'ऐसे बंटा चूल्हा' आधुनिक समाज की आधुनिक बहुओं की साजिश की शिकार एक बूढ़ी सास की व्यथा-कथा है. अंततः बूढ़ी और पेंशन भोगी सास को बहुओं के भरोसे का त्याग कर अपना चूल्हा बहुओं से अलग करना पड़ता है.

इसी प्रकार संग्रह की भिन्न-भिन्न कहानियां आज के परिवार और समाज के विभिन्न चित्र प्रस्तुत करती हैं. कथाकार ने कहानियों में कलात्मकता का प्रयोग नहीं किया है बल्कि सीधे सारी घटनाओं का सहज सरल चित्रण किया है जो अंततः मर्म को स्पर्श कर जाता है.

राजेंद्र आहुति की कहानियों में परिवार, समाज और देशकाल का संपूर्ण चिंतन और चिंता दोनों समान रूप से समाहित हैं.

'स्नेह दंश' महिलाओं के शारीरिक शोषण के पर्त खोलती है. पुरुष स्त्रियों के शारीरिक आकर्षण का लालची होता है. जो किसी न किसी तरह अपनी नीयत डांवाडोल कर बैठता है. अपने ही दांपत्य को छलता रहता है. अंततः किसी को कोई सही मंज़िल नहीं मिल पाती है.

रांची और आगरा ये दो शहर चाहे जिन चीज़ों के लिए प्रसिद्ध हों लेकिन आमजन की भाषा में लोग यही अर्थ निकालते हैं कि यहां पागलों की चिकित्सा ही की जाती है. जो भी हो 'सिर्फ़ पागल ही नहीं जाते रांची' ऐसी कहानी है जो पढ़ते-पढ़ते भीतर तक अंतर्मन को उद्वेलित भी करती है.

शहर से लेकर राष्ट्र चिंतन तक की पूरी गाथा 'हमारी दुनियां' कहानी में वार्तालाप के द्वारा चित्रित हुई है. इस चिंतन में जीवन चिंतन से विमुख होना व्यक्ति के वश की बात नहीं है. परिवार के लोग आर्थिक चिंतन से पृथक अन्य कोई चिंता नहीं करना चाहते हैं. क्योंकि उनके लिए सारी चिंता व्यर्थ की बात होती है. कमोबेश यही स्थिति प्रत्येक परिवार की होती है. परिवारों में राष्ट्रचिंतन की बात मूर्खों

वाली बात होती है. फिर भी यदि कहीं किसी परिवार में राष्ट्रचिंतन हो रहा है तो देश के लिए यही बड़ी उपलब्धि है.

'सोने की चूड़ियां' कहानी मां और बेटे के मध्य संदेह का बीज बोती है. मां के संदेह और बेटे की ईमानदारी के बीच एक दीवार खड़ी हो चुकी थी, जिसे बेटे की आर्थिक कुर्बानी के बाद बनी दूसरी चूड़ी ने तोड़ने का काम किया. सच ही कहा जाता है कि कंचन अर्थात सोना, भाई-भाई के बीच ही नहीं मां बेटे के बीच भी एक बड़ी दीवार खड़ी कर देता है.

'नादान सोच' कहानी भले ही बेटी के शारीरिक शोषण को समाज के नादान सोच के रूप में व्यक्त हुई हो, किंतु आज समाज में ऐसी कई घटनाएं घट चुकी हैं, जिनमें बाप अपराधी बनकर समाज के सामने आया है. आज समाज को आत्मचिंतन की ज़रूरत है. किसी भी परिवार में यदि महिला अभिभावक के रूप में खड़ी हुई है तो ऐसे परिवार में परिवार का मुख्य आर्थिक संवाहक बैकुंठ के रूप में पैदा होता है जो अंततः पागल होकर भीख मांगने को मज़बूर हो जाता है. 'कुछ भी मुमकिन है' कहानी इसी सत्य को उद्घाटित करती है. हिजड़ों के आतंक से भरपूर कहानी 'घर आये हिजड़े' में व्यक्त हुई है. पिता की यादों को समर्पित कहानी '१९५२ के पिता की स्मृतियां' है. आज के आर्थिक वितंडावाद के घिरे समाज में अब पिता को अच्छी स्मृतियों में नहीं देख पाने वाले पुत्रों के लिए उदाहरण स्वरूप है यह कहानी.

हमें इस कहानी संग्रह को पढ़ते हुए याद आ रहा है नामवर सिंह का कथन कि, 'ज़िंदगी की सच्चाई के किसी नये पहलू को सामने लाने के लिए ज़िंदगी की ज़्यादा गहरी पहचान और अंतर्दृष्टि चाहिए.' आज उसकी कमी है. इधर कहानी पूरी तरह सामाजिक हो गयी है. पर कहानी जहां बनती है, वह सामाजिक यथार्थ का चित्रण नहीं, बल्कि उसमें निहित मानवीय संवेदना है. यथार्थ के आग्रह के कारण हम लोग कहानी में वातावरण बनाने के लिए बहुत सी कड़वी, अप्रिय, भयानक स्थितियों का चित्रण करते हैं और इस तरह परिवेश तो बड़ा यथार्थ हो जाता है, लेकिन कहानी तो इस परिवेश से बनती नहीं है. उस परिवेश में भाग लेनेवाला मनुष्य कहां टूटता है, कहां खड़ा होता है, मार खाता है....कहां लड़ता है, मनुष्य की उस स्थिति में....या उसके माननीय तेवर में कहानी होती है...कहानी वहां बनती है.' यह उदाहरण 'तथास्तु' कहानी संग्रह की कहानियों पर सच साबित हो रहा है.

पूरा संग्रह सामाजिक, पारिवारिक स्थितियों को समर्पित है. 'तथास्तु' अर्थात 'ऐसा ही हो' की कई कहानियां ऐसी हैं जो यह कहती हैं कि ऐसा न हो तो अच्छा हो. तब कितना सुंदर होगा हमारा परिवार, हमारा समाज, हमारा शहर और हमारा राष्ट्र. काश, हमें विडंबनाओं से न जूझना पड़े, लेकिन क्या किया जाये हमें परिवार, समाज, शहर और राष्ट्र में ही जीना है तो उपस्थित परिवेश की विडंबनाओं में जूझना ही पड़ेगा, संघर्ष करना ही पड़ेगा. यही हमारी नियति है. जिन कहानियों का उल्लेख नहीं कर पाया, इन्हें पाठकों के ऊपर छोड़ता हूं और अच्छी कहानियों के लिए राजेंद्र आहुति और प्रकाशक को हार्दिक साधुवाद कहने का दिल कर रहा है.

के.२९/४५, कपिलेश्वर गली,
चौखंभा, वाराणसी-२२१००१.
मो.: ९७२११६८८४१

चलिए 'ग्रीस और दुबई' की सैर करें

श्याम कुमार राई

ग्रीस और दुबई (यात्रा वृतांत) **: माला वर्मा**
प्रकाशक - मानव प्रकाशन, १३१, चित्तरंजन एवेन्यु, कोलकाता - ७०० ०७३. मू. ४०० रु.

'सैर कर दुनिया की गाफिल, ज़िंदगानी फिर कहां
ज़िंदगी गर कुछ रही तो, नौजवानी फिर कहां?'

किसी शायर की ये मशहूर पंक्तियां हममें से कई लोगों ने ज़रूर सुनी व पढ़ी होंगी पर लगता है लेखिका माला वर्मा ने इसे जीवन में उतार लेने की ठान ली है तभी तो वे एक बार फिर निकल पड़ीं - 'ग्रीस और दुबई' देखने और इसी शीर्षक से एक पुस्तक लेकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो गयीं. इससे पहले वे यात्रा वृतांत की छह पुस्तकें लिख चुकी हैं और पाठकों को चीन, अमेरिका, मिस्र, सिंगापुर, मलयेशिया, थाइलैंड, यूरोप देशों की सैर करा चुकी हैं.

मालाजी लंबे समय से साहित्य की लगभग सभी

विधाओं में लेखन करती आ रही हैं इसलिए इनकी यात्रा वृतांत पुस्तक में एक साहित्यिक रस मिलता है और यही ख़ूबी उनकी इस ४६४ पृष्ठीय 'ग्रीस और दुबई' यात्रा वृतांत को पढ़ने में झलकती है. दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि यह पुस्तक सफ़र के आनंद के साथ-साथ किसी उम्दा रचना का स्वाद भी देती चलती है. इस बात को ख़ुद महसूसा जा सकता है क्योंकि इस यात्रा वृतांत को बड़े ही मनोयोग से लिखा गया है. लेखिका ने इस पुस्तक में इन देशों का वर्णन इस तरह किया है जैसे उन्होंने एक बार नहीं, दो बार उन देशों की सैर का आनंद लिया है. पहली बार तब, जब इन देशों की यात्रा कर रही थीं और उनसे संबंधित चीज़ों की नोटिस ले रही थीं. दूसरी बार तब, जब वे उन अनुभवों को इस पुस्तक की शक्ल दे रही थीं.

शायद ही इन देशों की कोई बहुत ही मामूली बातें या स्थान छूटा हो जिनका वर्णन उन्होंने न किया हो. बड़ी ही सहज-सरल भाषा में उनके लिखे हुए हर शब्द के साथ पाठक हो लेता है. यही उनकी लेखनी की चिर-परिचित ख़ूबी और आकर्षण है. बीच-बीच में स्वरचित एवं विषयानुकूल अन्य कविताओं, शेरो–शायरी का सुंदर उपयोग कर अपने कवयित्री मिज़ाज का भी बख़ूबी पता देती चलती हैं साथ ही सिने जगत की जानकारियों एवं गानों के बारे में पाठकों के साथ साझा करते चलना इस यात्रा वृतांत को यक़ीनन और रोचक बनाता है.

एक प्रसंग बड़ा ही भावुक बन पड़ा है जब लेखिका के पति डॉ. वर्मा ने अपने गाइड मैरियाना की फ़रमाइश पर फ़िल्म 'काबुलीवाला' का सदाबहार गाना 'ऐ मेरे प्यारे वतन, ऐ मेरे बिछड़े चमन, तुझपे दिल कुरबान...' विभिन्न देशों के पर्यटकों की उपस्थिति में गाया. इस तरह डॉ. वर्मा ने निश्चय ही अपनी तरह का एक कीर्तिमान बनाया है. अपने वतन की याद में दूसरे वतन के एक ऐतिहासिक स्थल पर वतनपरस्ती का सदाबहार गीत गाते समय क्या समां बंधा होगा, कल्पना की जा सकती है.

यह यात्रा वृतांत जानकारियों का भंडार है. ग्रीस की पहली रानी का नाम क्या था? ओडियन किसे कहा जाता है? एथेंस में कुल कितने थियेटर हैं? इन सबकी जानकारी पाने के साथ-साथ यह भी जानेंगे कि 'डायोनिसस' थियेटर दुनिया का सबसे पुराना थियेटर माना जाता है जिसे पूरा का पूरा चट्टान से बनाया गया है. यहां ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी में पहला नाटक मंचन किया गया था. खाने के लिए सबसे स्वास्थ्यवर्द्धक माना जाने वाला जैतून का तेल कहां और कैसे प्राप्त किया जाता है, इसकी जानकारी अलग से कई पन्नों में दी गयी है. ये सारी अतिरिक्त जानकारियां उन स्थानों की सैर के साथ-साथ आप पाते हैं और निश्चित तौर पर ये बोनस सामग्री है. विश्वविख्यात सुकरात, प्लेटो और अरस्तु जैसे महान विचारकों के संबंध में अच्छी ख़ासी जानकारी है. इसी क्रम में ग्रीक के महान चिकित्सक हिप्पोक्रेटिस के बारे में भरपूर जानकारी उपलब्ध है. इन्हें फादर ऑफ मेडेसिन कहा जाता है. दुनिया भर के डॉक्टर डिग्री लेते समय जिस शपथ पत्र पर दस्तख़त करते हैं उसे 'हिप्पोक्रेटिस ओथ' कहा जाता है जिसमें लिखा होता है कि डॉक्टर का व्यवहार तथा चरित्र कैसा होना चाहिए तथा वह इसका आजीवन पालन करे.

इसके साथ ही आपको ग्रीस में बसे 'ओलंपिया' शहर का उल्लेख मिलेगा जहां पहली बार ओलंपिक खेल खेला गया था तथा वह स्थान जहां आज भी ओलंपिक मशाल जलाकर पूरी दुनियां में घुमायी जाती है. 'स्पार्टा' शहर की कहानी जिसे इतिहास के पन्नों में जब्त दुनिया के सबसे बहादुर योद्धाओं का गढ़ माना गया. 'मैराथन' शब्द से भला कौन परिचित नहीं, इसका लेखा-जोखा भी मिलेगा...इस तरह पुस्तक के समाप्त होने के बाद आपके पास 'ग्रीस और दुबई' की सैर का आनंद उठाने के साथ-साथ ढेरों जानकारियां भी मिल जाती हैं. ग्रीस के बाद दुबई की कहानी भी सुनिए. पुस्तक में चित्रों की कमी महसूस होती है पर बहुमूल्य सामग्री और पृष्ठों की संख्या देखकर चित्रों का न होना उतना अखरता नहीं है. अतः मात्र पर्यटन में रुचि रखने वाले ही नहीं सामान्य पाठकों के लिए भी पुस्तक पठनीय व संग्रहणीय है. एक उपयोगी पर्यटन वृतांत पाठकों को देने के लिए लेखिका साधुवाद की हक़दार तो है हीं. पाठकों के बीच इस पुस्तक का यथायोग्य स्वागत होगा ऐसी आशा-कामना करता हूं.

कांथरा, पुरानी बस्ती,
सलुवा-७२११४५ (प.बं.)
मो.-९९३२६७६४२७

संवादधर्मिता साक्षात्कार का सौंदर्य है

✍ सुशील सिद्धार्थ

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं (साक्षात्कार)
: सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१ **मू.** २५०/-

साक्षात्कार अत्यंत लोकप्रिय और उपयोगी विधा है. पाठक यह अनुभव करता है जैसे वह किसी रचनाकार के सामने बैठकर उससे बातें कर रहा है. उपयोगी इसलिए कि इसमें रचनाकार के 'अंतः साक्ष्य' मिलते हैं. इन साक्ष्यों से रचना संसार को समझने में मदद मिलती है. आदि विधा के नाम पर कहानी या कविता का नाम विद्वान लेते रहते हैं. मुझे लगने लगा है कि संवाद ही साहित्य की आदि विधा है. कोई भी प्राणी सबसे पहले अपने अकेलेपन को समाप्त करना चाहता है. ग़ालिब जब कहते हैं — 'रहिए अब ऐसी जगह चल कर जहां कोई न हो, हमसुख़न कोई न हो और हमज़बां कोई न हो', तो उनकी त्रासदी समझी जा सकती है. यह असामान्य मनोदशा है. सामान्य स्थिति यह है कि मनुष्य किसी की बात सुनना चाहता है, किसी से कुछ कहना चाहता है. संवाद सभ्यता और संस्कृति का बीज रूप है. इस संवाद और साक्षात्कार ने न जाने कितने रूप बदले हैं, जाने कितने नामों से स्वयं को व्यक्त किया है. आधुनिक साहित्य में साक्षात्कार को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है. बातचीत, संवाद, आमने-सामने, सागर-सीपी या कुछ और नामों से साक्षात्कार पत्र-पत्रिकाओं में छपते हैं...खूब पढ़े जाते हैं.

कुछ पत्रकारों और लेखकों ने साक्षात्कार लेने की कला को एक रचनात्मक हुनर बना लिया है. उन्हें पता है कि किस लेखक से बात करने का सलीका क्या है. संवाद एक सलीका ही तो है. साक्षात्कार का सौंदर्य है संवादधर्मी होना. ....ऐसी अनेक विशेषताएं सुधा ओम ढींगरा द्वारा लिये गये साक्षात्कारों में सहज रूप से उपलब्ध हैं. 'वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं' में मौजूद साक्षात्कार इस विधा की गरिमा को समृद्ध करते हैं. समर्पित रचनाकार सुधा ओम ढींगरा बातचीत करने में दक्ष हैं. वैसे भी जब वे फ़ोन करती हैं तो अपनी मधुर आवाज़ से वातावरण सरस बना देती हैं. जीवंतता साक्षात्कार लेने वाले का सबसे बड़ा गुण है. बातचीत को किसी फ़ाइल की तरह निपटा देने से मामला बनता नहीं. सुधा जी को इस विधा में दिलचस्पी है. उन्होंने अनुभव और अध्ययन से इसे विकसित किया है. वे ऐसी लेखिका हैं, जिन्हें टेक्नोलॉज़ी का महत्व पता है. बातचीत करने के लिए आमने-सामने होने के अतिरिक्त उन्होंने फ़ोन, ऑनलाइन और स्काइप का उपयोग किया है. बल्कि आमना-सामना अत्यल्प है. इससे कई बार औपचारिक या क़िताबी होने का संकट रहता है जो स्वाभाविक है. ...लेकिन यह देखकर प्रसन्नता होती है कि सारे साक्षात्कार जीवंत और दिलचस्प हैं.

अमेरिका, कैनेडा, इंग्लैंड, आबूधाबी, शारजाह, डेनमार्क और नार्वे के साहित्यकारों से सुधा जी के प्रश्न सतर्क हैं. साहित्यकारों ने भी सटीक उत्तर दिये हैं. यह पुस्तक पाठकों की ज्ञानवृद्धि के साथ उनकी संवेदना का दायरा भी व्यापक करेगी. वैश्विक रचनाशीलता की मानसिकता को यहां लक्षित किया जा सकता है. ऐसी पुस्तकें हिंदी में बहुत कम हैं. शायद न के बराबर. विश्व के अनेक देशों में सक्रिय हिंदी रचनाकारों के विचार पाठकों तक पहुंचाने के लिए हमें सुधा ओम ढींगरा को धन्यवाद भी देना चाहिए. हिंदी में कुछ विशेषज्ञ रहे हैं जो साक्षात्कार को रचना बना देते हैं. सुधा जी को देखकर...उनके काम को पढ़कर और इस विधा के विषय में उनके विचार जानकर उनकी विशेषज्ञता की सराहना की जानी चाहिए.

इस पुस्तक के लिए श्रेष्ठ रचनाकार और संवेदनशील संवादिया सुधा ओम ढींगरा को बहुत-बहुत बधाई. शुभकामनाएं. यह भरोसा है कि वे अपनी इस यात्रा को अनुद्घाटित दिशाओं में ले जायेंगी. 'वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं' को पढ़कर प्रवासी लेखन कह कर अनेक लेखकों को हाशिए पर ढकेलने की प्रवृत्ति भी कम होगी.

✆ **मो.:९८६८०७६१८२,**
ई-मेल : sushilsiddharth@gmail.com

गीत

मुझमें चिन्मय प्राण धर दो!

✍ *स्वर्ण रेखा मिश्रा*

पूर्ण हो तुम मैं अधूरी, मुझमें चिन्मय प्राण धर दो!
तुम मुझे अब पूर्ण कर दो, तुम मुझे अब पूर्ण कर दो,

तृप्त धरती की तरह ही, श्रावणी के गीत गाऊं,
हरित, स्वर्णित कोपलों से, स्वयं को विधिवत सजाऊं,
गुनगुनाऊं मैं प्रणय के गीत प्रियतम को रिझाऊं,
छू हमारे शुष्क अधरों पर नवल रसधार झर दो.

पूर्ण हो तुम मैं अधूरी, मुझमें चिन्मय प्राण धर दो!

कोऽहम से सोऽहम तक, अंतरंग श्वांसें मिले,
एक रसता धार में ही, प्रेम की ज्योती जले,
तार की यह तम्यता, अंतर्मनः अनुभूति हो,
दिव्य उस परिदृश्य के तुम इस हृदय में भाव भर दो,

पूर्ण हो तुम मैं अधूरी, मुझमें चिन्मय प्राण धर दो!

इस डगर से उस डगर पर, आज तक भटकी फिरी,
तृषित मन की वेदना से, पूर्ण कंटक में घिरी,
ग्रसित होकर रह गयी मैं दुःख उदधि संताप से,
मम हृदय की वेदना को, हे प्रिये तुम आज हर दो,

पूर्ण हो तुम मैं अधूरी, मुझमें चिन्मय प्राण धर दो!

✉ राधा नगर, निकट-बिलग्राम चुंगी, जिला : हरदोई (उ. प्र.)- २४१००१. मो. ८५४२९९३२९७

निवेदन

रचनाकारों से

*"**कथाबिंब**" एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि **विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.***

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यतः प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी रचनाएं भेज सकते हैं. ई-मेल का पता है : kathabimb@yahoo.com. रचना की "डॉक" फ़ाइल के साथ "पीडीएफ" फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी किसी अन्य पत्रिका मे नहीं भेजी जायेगी.

प्राप्ति-स्वीकार

मां जोगणियां (उपन्यास) : **श्याम कुमार पोकरा,** अर्पित पब्लिकेशन्स, अक्षरधाम, गुरू तेग बहादुर कॉलोनी, कैथल-१३६०२७. मू. २५० रु.

आशंकाओं के नागपाश (कहानी संग्रह) : **कुंवर प्रेमिल,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २०० रु.

घर आंगन और गिरगिटान (क. संकलन) : **सं. कुंवर प्रेमिल,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २५० रु.

तथास्तु (क. सं.) : **राजेंद्र आहुति,** अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर-८४२००२. मू. २०० रु.

कमरा नं. १०३ (क. सं.) : **सुधा ओम ढींगरा,** हिंदी साहित्य निकेतन, १६, साहित्य विहार, बिजनौर-२४६७०१. मू. ५० रु.

स्याह लहरों का ध्रुवतारा (क. सं.) : **नंद किशोर,** श्री प्रकाशन, ३२, सरकार लेन, कोलकाता-७०००००७. मू. १५० रु.

उमस (क. सं.) : **देवेंद्र कुमार मिश्रा,** स्वाति अकादमी, बी-५/२६३, यमुना विहार, दिल्ली-११००५३. मू. ३५० रु.

बारिश, ठंड और वह (क. सं.) : **गजेंद्र रावत,** कश्यप पब्लिकेशन, बी-४८/यूजी-४, दिलशाद-२, डीएलएफ, गाज़ियाबाद-५. मू. १८० रु.

ओपेरा हाउस (क. सं.) : **अशोक कुमार प्रजापति,** वातायन प्रकाशन, अयोध्या अपार्टमेंट,फ्रेजर रोड, पटना-८०००२६. मू. २५० रु.

त्रिपथगा (क. सं.) : **एल. एल. श्रीवास्तव,** प्र. सुश्री सुषमा श्रीवास्तव, कामायनी, १४३/२, बलिहार रोड, मोरहाबादी, रांची-८. मू. १५० रु.

लेकिन वह सच था ! (क. सं.) : **एल. एल. श्रीवास्तव,** प्र. सुश्री सुषमा श्रीवास्तव, कामायनी, १४३/२, बलिहार रोड, मोरहाबादी, रांची-८. मू. १५० रु.

गांव की माटी (क. वा.) : **एल. एल. श्रीवास्तव,** प्र. सुश्री सुषमा श्रीवास्तव, कामायनी, १४३/२, बलिहार रोड, मोरहाबादी, रांची-८. मू. ७५ रु.

दोस्तों के जाने पर (यादें) : **कमलेश्वर,** किताब घर, ४८५५/२४, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. ९० रु.

दुष्यंत के जाने पर (यादें) : **सं. कमलेश्वर,** किताब घर, ४८५५/२४, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. ९० रु.

मोहन राकेश के जाने पर (यादें) : **सं. कमलेश्वर,** किताब घर, ४८५५/२४, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. ९० रु.

ग्रीस और दुबई (यात्रा वृतांत) : **माला वर्मा,** मानव प्रकाशन, १३१, चित्तरंजन एवेन्यू, कोलकाता-७०००७३. मू. ४०० रु.

मन के कोने से (साक्षात्कार) : **मधु अरोड़ा,** यश पब्लिकेशन्स, १/१०७५३, गली नं. ३, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, नयी दिल्ली-११००३२. मू. ५९५ रु.

वैश्विक रचनाकार : कुछ मूलभूत जिज्ञासाएं (साक्षात्कार) : **सुधा ओम ढींगरा,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २५० रु.

जूठन और अन्य लघुकथाएं (ल. क.) : **विद्यालाल**, बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से.९, रोड-११, करतारपुर इं. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. ७० रु.

बुनी चदरिया (गद्य विविधा) : **उमेश अनादि,** बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से.९, रोड-११, करतारपुर इं. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. ८० रु.

मित्र क ख ग (व्यंग) : **प्रमोद त्रिवेदी ''पुष्प'',** बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से.९, रोड-११, करतारपुर इं. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. ८० रु.

परित्यक्ता (खं. काव्य) : **हरीलाल ''मिलन'',** ज्ञानोदय प्रकाशन, ६-७ जी, मानसरोवर कॉम्प्लेक्स, पी. रोड, कानपुर-२०८०१२. मू. २५० रु.

आलाप संलाप (प्र. काव्य) : **डॉ. अमरेंद्र,** समीक्षा प्रकाशन, जे. के. मार्केट, छोटी कल्याणी, मुजफ्फरपुर (बिहार)-८४२००१. मू. २०० रु.

महफ़िल शायरी की (ग़ज़ल) : **जितेंद्र राणा,** प्र. साई भक्त संध्या, आर-७०२, न्यू गोल्डन नेस्ट, फेस-१४, भयंदर-४०११०५. मू. १४५ रु.

सारथी मैं हूं (ग़. सं.) : **किशन तिवारी,** पहले पहल प्रकाशन, २५-ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, एम. पी. नगर, भोपाल (म. प्र.). मू. १५० रु.

अजनबी होते शहर में (कविता सं.) : **विनय मितवा,** साक्षी प्रकाशन, एस-१६, नवीन शाहदरा, नयी दिल्ली-११००३२. मू. १५० रु.

लिपटी हुई सी धूप (क. सं.) : **रितु वर्मा,** बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से.९, रोड-११, करतारपुर इं. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. ८० रु.

उड़ान नन्हे परिंदे की (का. सं.) : **आशु सिंह** ''अमिट'', बोधि प्रकाशन, एफ-७७, से.९, रोड-११, करतारपुर इं. एरिया, जयपुर-३०२००६. मू. ४० रु.